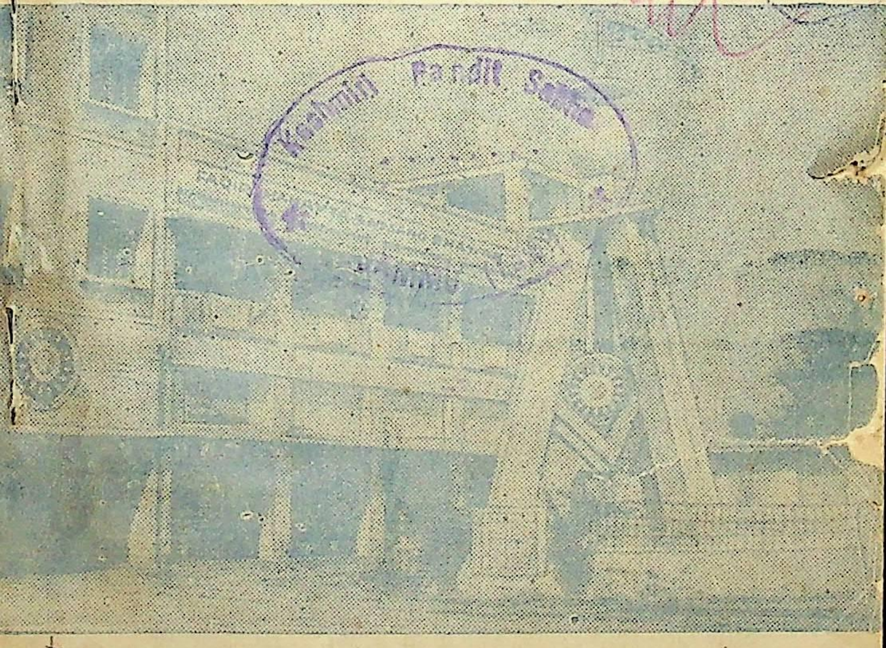
मानव मन्दिर



फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट
सुतेहरी रोड, होशियारपुर
द्वारा अमूल्य भेंट

संस्थापकः परम संत परम दयाल
पं. फकीर चन्द जी महाराज

FORM 1
(See Rule 8)

place of publication	Hoshiarpur
Date of publication	10th of every month
periodicety of publication	Monthly
printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

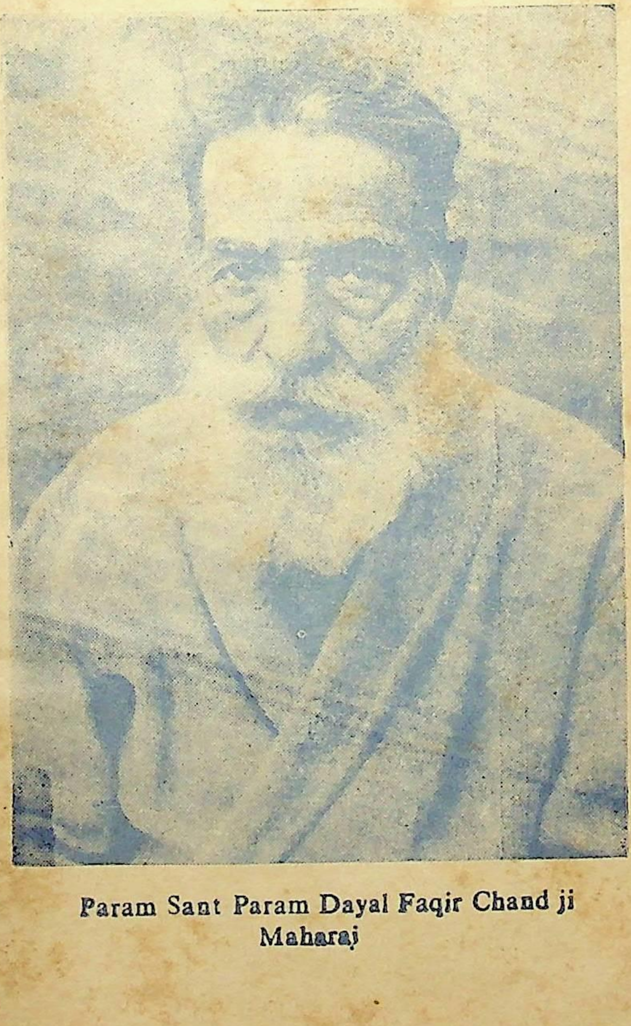
I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated:

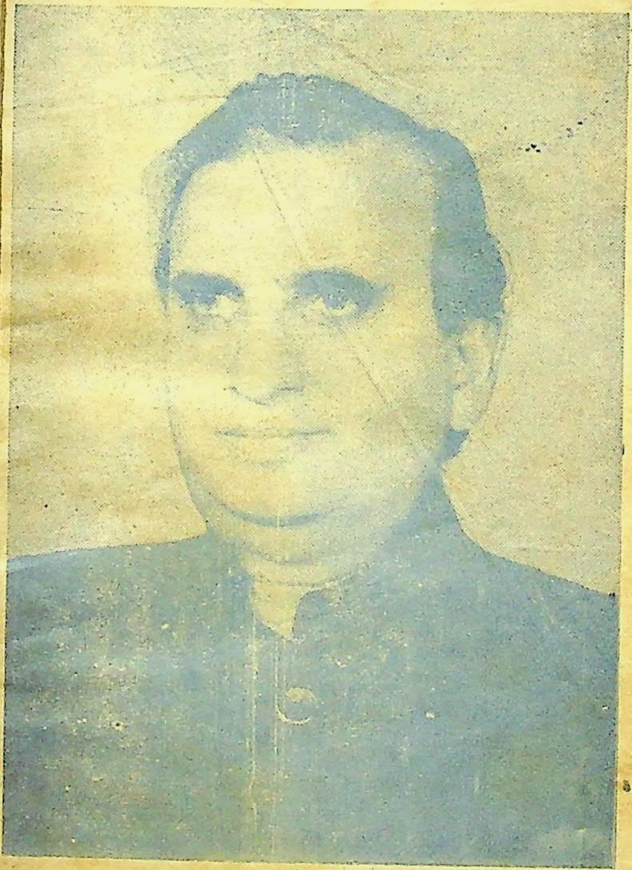
Signature of Publisher

Printed and published by: Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग
17-1-88 को होगा ।



Param Sant Param Dayal Faqir Chand ji Maharaj



Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma ji Maharaj

ासिक —

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की सेवा में संलग्न मासिक पत्र ।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :

डा० परस राम अग्रवाल

र्ष 14	सोमवार 10 जनवरी 1988	संख्या 9

सत्संग हज़ूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

(गतांक नवम्बर 87 पृष्ठ 7 से आगे)

(3) गणेश जी का वाज़ और ऐलान

शिवजी का मर्कज वातन समझ कर गणेश जी दुनिया में आये। इन्सानी सूरत अख्तियार की ताकि किसी को उन की अजीब सूरत देख कर खौफ न आये और चौरास्ते पर खड़े होकर ब-आवाज़ बुलन्द आवाज देना और वात सुनाना शुरू किया :—

"जिसे शहवत (काम) से नफ़रत है वह मेरे साथ कैलाश को चले मैं फौरन उसे हिजड़ा बनवा दूँ। वह शहवत के पंजे से रिहा हो जाये।

जो ग़रूर (अभिमान) के जजबा से तंग आया हुआ है वह ब-आसानी उससे छुटकारा पा सकता है, वह भी चले, बे-आबरूई की आदत सीखे, जिल्लत और रुसवाई की जिन्दगी अख्तियार करे।"

जो लोभ और लालच को नहीं चाहता उसे कैलाश पर ले चलकर मफलस (गरीबी) और बे-नवा व-आसानी बनाया जा सकता है। तरकीब सहल है, मुश्किल नहीं है। शिवजी महाराज खुद गुरु और पीरो मुर्शिद बनकर अफलास (गरीबी)

ंगहाली और बा-एहतियाजी के राह की रहवरी और रहनु-
गाई फरमायेंगे।

जो बा-तअल्लुकी, वाबस्तगी और औलादपसन्दी के हाथों
। नालां है, इसकी मखफरत (आजादी) का रास्ता निकल
ाया है आ जाये और देखे कैसे सहूलत के साथ खूबी से
ावस्तगी (चिमटाव) की जंजीर से रिहाई दिलाई जा सकती
। और साथ ही जो ग़रूर से किनाराकश होना चाहे इस
ी भी तदवीर है। उसकी हिम्मत बुलन्द हौस लगी, अव-
ुवाउलगर्जी, खुद-अख्तियारी, खुदज़ब्ती, खुदएतवरी के
जबात को रंजक की तरह दम के दम में उड़ा दिया
ायेगा।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की बेजखनी की
ालीम का यकीनी दौर आ गया है।

"सला आम है या रान नुक्तावां के लिए" पहिले तो
णेश जी का वाज़ (ऐलान) सुनने के लिए हजारों और लाखों
। भीड़ इकट्ठी हो गई। दुनिया अजायवपरस्त है। अजायब-
रस्ती भी इन्सानी फितरत का जबरदस्त जज़बा है। आयें,
र से उनकी बातें सुनीं फिर सबको उनकी तरफ से नफरत
गई। भीड़ रोज-वरोज हटती चली गई। सात रोज तक
ापने सरे-आम पर अपना जोरदार लेक्चर सुनाया, आठवें
न सिर्फ़ एक आदमी आया, गणेश जी ने समझा इसमें
ूर अधिकार संस्कार (जरफियत अहलियत का जजबा)
ाा। तब तो वाज सुनने के लिए आया है। अगर अहल
साहब ज़रफ न होता तो औरों की तरह यह भी दुम दबा
र भाग गया होता।

आप उसकी जानव मुखातिब हुए, "भाईजान! आप

अधिकारी पुरुष मालूम होते हैं। क्या आप काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के पंजे से छुटकारा पाना चाहते हैं ? अगर मंजूर है तो चलिये। कैलाश पर्वत पर शिव भगवान हिदायत करने के लिए रजामन्द हुए हैं वो आप जैसे अधिकारी की राह देख रहे होंगे।"

यह हिंसा-"बावले ! क्या पागलखाने में जगह नहीं थी जो तू यहाँ आकर बेतुकी आलाप बाँध रहा है ! मालूम होता है तू किसी पागलखाने से भाग आया है। नादान ! दुनिया में कौन हिजड़ा, गरीब, बेकस, बेहिम्मत और मुफलस रहना चाहता है। तेरा कोई वली-वारिस नहीं है इसलिए फीकी-२ बातें करता फिरता है।"

गणेश जी ने उसे समझाना चाहा। उसने आदमियों को आवाज दी। "भाइयो ! दौड़ो। इस मखबोद अलहवास और फातर अल अकल बावले को अभी गिरफ्तार करो। यह शायद बरेली के पागलखाने से भाग आया है। फौरन इसे पकड़ो, वरना यह खून-खराबा कर डालेगा। इस दीवाने को इतनी भी तो तमीज नहीं है कि वह इन्सानी जिन्दगी की वरकतों को समझाता। यह हिजड़ा, अपाहिज, काहिल और गरीब बनाने की हिदायत करने आया है। हिन्दू यूं ही मफलस कलाच बन गये हैं। और जमाने के हाथों तंग आ गये हैं पकड़ो-पकड़ो जल्द पकड़ो यह जाने न पाये।"

गणेश जी ने देखा कि उनके पकड़ने के लिए गुट के गुट आदमी इकट्ठे हो रहे हैं। वो बुजदिल और डरपोक तो थे नहीं जो भाग जाते ख्याल को तबदील रर दिया। ख्याल ही से वो इन्सान बने थे ख्याल के तरक कर देने से अपनी असली सूरत पर आ गये :-

एक दन्त दयावन्त चार भुजा धारी ।
मस्तक सिन्दूर सोहे मूष की सवारी ।।

पहाड़ की तरह जिसामत (शरीर वाला) चार हाथ, एक सूंड लाल, भभूका जिस्म । और लुत्फ यह कि चूहे पर सवार थे । आई हुई भीड़ काई की तरह फट गई । कोई इधर भागा कोई उधर भागा । सब दम के दम में रफूचक्कर हो गये ।

बाप रे बाप ! यह तो कोई पिशाच सा जो इन्सानी शक्ल में हमको बहकाने आया था, सस्ते छूटे ।

गणेश जी ने मुमकिन है यह सोचा होगा कि हिन्दू उनके मुतकद हैं इनकी असली शक्ल देखकर ईमान लायेंगे । लेकिन हिन्दू तो हिन्दू ही हैं उन्हें गणेश जी से क्या काम है । एक नहीं हजार गणेश, हजार शिव, हजार विष्णु और हजार ब्रह्मा आयें । ये तो मूर्ति के शैदाई हैं । अगड़बम-अगड़बम करते हुए शिवजी की पिंडी पर रोजाना दो-चार घड़े पानी ढलकाने के सौदाई होते हैं । शिव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश हैं या नहीं हैं । इसे जानने का उनको परवाह कब है ।

(क्रमशः)

—० शोक समाचार ०—

सत्संगीजन को बड़े दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि श्री राम कृष्ण डोगरा अनुज श्री नारायण दास डोगरा का स्वर्गवास 13-11-87 को चण्डीगढ़ में हुआ है । डोगरा परिवार वाले मानवता मन्दिर के अत्यन्त श्रद्धालु भक्त हैं ।

मानवता मन्दिर परिवार व सत्संगी मालिक राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें ।

जनरल सेक्रेटरी

सत्संग परमसन्त परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज

(सलवान हाईस्कूल, दिल्ली 1-10-71 सायम्)

शब्द पढ़ा गया :-

हंसा करो नाम नौकरी ।

नाम विदेही जिस दिन सुमिरै, नहीं भूलै छिन एक घरी ।
नाम विदेही जो जन पावै, कबहूँ न सुरत विसरी ।।
ऐसौ शब्द सत गुरु से पावै, आवागवन हरी ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, पावै अमर नगरी ।।

यह नाम जिसका उल्लेख कबीर साहब ने किया है, इसे केवल हंस लोग ही समझ सकते हैं। चाहे वह उसकी नौकरी करें या न करें। हंस वह होते हैं जिनमें सूझ-बूझ और विवेक शक्ति होती है। इसलिये वही इस नाम तक पहुंच सकते हैं। प्रारम्भ में मैंने राम-राम या राधास्वामी का जप किया है। मैं अपनी आत्मा से पूछता हूँ क्या मुझे नाम विदेही प्राप्त हो गया है ? क्या मुझे विश्वास हो गया है कि मैं आवागमन से बच गया हूँ ? यह प्रश्न है जो मैं सत्संग कराने वालों से पूछता हूँ।

मुझमें समझ-बूझ, विवेक, तमीज आ गई है। मैंने बहुत नाम जपा है। बीन सुनी है। प्रकाश देखे हैं। बीनों को सुनने और प्रकाश को देखने के पश्चात् क्या मैं संसार के

दु:खों, सुखों, आशाओं, क्रोध, लोभ, और मोह से बच गया हूँ? केवल मैं ही नहीं बड़े - २ सन्त महात्मा इनकी लपेट में आ गये और इसमें फँस गये हैं। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की पवित्र विभूति का उदाहरण मेरे सामने है। जब उन्हें गुस्सा आता था तब वे डण्डे मारते थे, यही बात लगभग सब सन्तों में देखी गई है या पढ़ने में आया है। ऐसी हालत में नाम लेने से क्या लाभ हुआ। वह नाम है विदेही। वह नाम है जिसका देह नहीं है। जब जबान से बोलता हूँ राधास्वामी या राम तो क्या वह देह वाला नहीं हुआ। तुम इसे भी छोड़ो। तुम शब्द सुनते हो, शब्द का देह है या नहीं? शब्द विदेह कैसे हुआ?

पीरे मुर्गा साहब को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं सबसे ऊँचा सत्संग दिये जा रहा हूँ, जो नाम जवान से लेता है विदेह नहीं है। राधास्वामी, सहस्राकार, ओंकार, ये सब देह वाले हैं, अगर जबान से इन्हें बोलो तो धुन होती है। ऐसी स्थिति में विदेही कैसे हुआ। अगर कोई महात्मा मेरी इस उक्ति का खंडन करे तो मैं जानूँ।

कबीर साहब कहते हैं कि वह शब्द विदेही है। । मुझे पता नहीं है कि कबीर साहब का विदेही शब्द क्या है? जो मैंने समझा है वह बताता हूँ।

तुम लोगों ने मेरे कई सत्संग सुने हैं, मैंने इनमें यह सिद्ध किया था कि इन भेषधारियों ने तुमको धोखा दिया है और तुम लोग धोखे के योग्य भी हो। क्या तुम लोग दुनिया के झगड़े लेकर मेरे पास नहीं आते हो? यह कैथल वाली माई है। यह सांसारिक आवश्यकताओं के वास्ते मेरे पास आती है। इसको मेरे पास आकर क्या रूहानी लाभ होगा? इसी प्रकार औरों की भी स्थिति है। सब लोग मेरे

पास दो-एक दुनिया के झमेलों के बंडल बाँध कर लाते हैं। कोई पुत्र मांगता है कोई स्वास्थ्य का इच्छुक है, कोई नौकरी मांगता है। कौन मेरे पास आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने को आता है? कोई भी नहीं, तो फिर विदेही नाम क्या होगा?

तुम लोग सुनो! जो अजपाजाप करते हैं या शब्द सुनते हैं वे जपने या सुनने वाले भी दुनिया से नहीं सुलझे हैं। लोगों को चाहे कह दिया जाये कि हम फँसे नहीं हैं मगर अपनी अन्तरात्मा की आवाज को कैसे दबायेंगे। अब कौन सा नाम विदेही हुआ। फँसता तो मैं भी हूँ। जब नाम भूल जाता हूँ शब्द सुनता हुआ भी फँस जाता हूँ।

वह नाम क्या है? उस नाम की प्राप्ति मुझे तुम सत्-संगियों से हुई है। जब से मुझे यह विश्वास आ गया कि मैं किसी के अन्दर में नहीं जाता हूं तब से नाम विदेही की प्राप्ति हुई है। क्या किसी महात्मा ने आज तक खुल्लमखुल्ला कहा है कि वे अपने चेलों के अन्दर नहीं जाते हैं? सकेत में ऊँचे महात्माओं ने भले ही कहा है किन्तु साफ - २ नहीं कहा है। कारण इसका यह है अगर साफ कह दिया जावे तो भेंट, चढ़ावा आना बन्द हो जाये अथवा उसमें कमी हो जावे।

मुझे क्यों विश्वास हुआ है? यह कि कितने ही विचार रूप, रंग, दृश्य मेरे अन्दर प्रकट होते हैं। ये वास्तव में हैं नहीं ये सब भासते हैं। केवल अक्स हैं। तुम कहते हो कि बाबा फकीर अन्दर में प्रकट हो गया है। ऐसा नहीं होता है। तुम्हारे मन में कोई बिचार दबा हुआ पड़ा रहता है। यही उसका कारण होता है तुमने उसे सत्य करके मान लिया है। वही हमारे सम्मुख प्रकट होता है अथवा नाचता रहता है। इस ज्ञान से मुझे जो प्राप्त हुआ वह यही कि विचार रूप बना कर सम्मुख आ जाते हैं जो वास्तव में सत्य नहीं है।

माया ही है। इनका प्रभाव मुझ पर नहीं होता है। उदाहरण के रूप में यहाँ एक रस्सी है जिसे साँप समझने से डर लगेगा और रस्सी समझ लिया जाय तो भय नहीं रहता। इसी प्रकार जब मेरे अन्दर में भिन्न - २ प्रकार के विचार उत्पन्न होते तथा दृश्य सम्मुख आते हैं या मैं संसार वालों से अपने आपको घिरा हुआ पाता हूँ, कोई कुछ और कोई कुछ कहता है, मैं अपने ज्ञान के कारण इनमें फँसता नहीं हूं अर्थात् मुझ पर इन विचारों और दृश्यों के घिराव का कोई प्रभाव नहीं होता है। इस प्रभाव न होने का नाम ही, नाम की प्राप्ति है किन्तु स्मरण रहे कि यह आधा नाम है पूरा नाम नहीं है। वह पूरा कब होगा ?

मैं हंस हूँ। वाणी में आया है कि हंसा नाम की नौकरी करो। मैंने हंस के रूप में नाम की नौकरी की है। जब शब्द सुनता हूं या प्रकाश को देखता हूं तो उस समय मुझे स्पष्ट अनुभव होता है कि प्रकाश को देखने वाला प्रकाश से पृथक् है। शब्द को सुनने वाला शब्द में नहीं है।

मैं इस समय तुमको देख रहा हूँ। तुम और हो और मैं और हूँ। इसी प्रकार प्रकाश जो दिखाई पड़ने वाला और है तथा देखने वाला और है। इसी तरह शब्द कुछ और है तथा शब्द को सुनने वाला कोई और है। मैं इस शब्द के सुनने वाले को ढूंढता रहता हूँ। अर्थात् नाम की नौकरी करता हूँ। तात्पर्य यह कि जो वास्तविक सतगुरु है वह प्रत्येक में स्थित है। मैं उसे सतत ढूंढता रहता हूँ। जब भी मैं उस को ढूंढने का प्रयत्न करता हूं, मेरा अहंभाव या मैंपना या वह अंश समाप्त हो जाता है और ऐसी अवस्था में प्रवेश प्राप्त हो जाता है या ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है। जिसका न कोई नाम है न कोई रूप है। राधास्वामी मतवाले इसे अकह, अगाध, अपार और अनामी कहते हैं।

गुरु नानक साहिब इसे अकाल पुरुष कहते हैं। सनातन धर्म वाले इसे परमतत्त्व आधार और कूटस्थ कहते हैं। मुसलमान इसे लाइलाइलिल्ला कहते हैं। तात्पर्य उस समय एक ऐसी अवस्था में चला जाता हूं कि जो वर्णनातीत है।

जब मुझे ऐसा ज्ञान हुआ कि मैं कौन हूं तो मैं समझ गया कि यह नाम की ही प्राप्ति है। यह ठीक है कि मानव उस समय अलख, अगम, अकह, अपार, अनामी से मिला होता है, किन्तु ऐसा होने पर क्या मैं कुछ बन गया ? या राधास्वामी दयाल कुछ बन गये या कोई अभ्यास करने वाला कुछ बन गया ? तुम मेरी अपनी स्थिति देखो कि यदि मैं कुछ बन गया होता तो मैंने अपनी रोगावस्था से मुक्ति पा ली होती या वे दूसरे महात्मा रोगी न रहते। राधास्वामी दयाल अपने जीवन में पिछले समय दो वर्ष अस्वस्थ रहे। लिखने वाले लिखते हैं कि स्वामी जी महाराज ने अपने में ऐसी बीमारियां उत्पन्न कर लीं जिन्होंने हकीमों तथा डाक्टरों को भी आश्चर्य में डाल दिया। इस संसार का आश्चर्यजनक रूप है। संसार के भावुक कहने लगे कि हजूर महाराज ने लोगों के कष्ट अपने आप लिये हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह कि सबको अपने -२ कर्मों का फल पाना पड़ता है। कोई रेख में मेख नहीं लगा सका।

मैं हंस हूं, विवेकी हूँ। प्रत्येक वस्तु को सोचने, समझने की शक्ति मुझ में है। यदि मैं यह कहूं कि मैं आत्मिक जगत् की ऊंची अवस्था पर पहुंच गया हूं तो मुझ में यह शक्ति होनी चाहिये कि मैं किसी का उपचार भी कर सकूं किन्तु यह बात नहीं है। वास्तव में मैं एक चेतन का बुलबुला हूं जो प्रकृति के खेल के क्रम में प्रकट हो गया हूँ। जब मैं शब्द अभ्यास में होता हूं उस समय मैं सुरतरूप में हो जाता हूँ। जब प्रकाश में होता हूं तो आत्मस्वरूप हो जाता हूँ। मन के

विचारों में ग्रस्त हुआ तो मनरूप हो जाता हूं और जब देह में होता हूं तो मैं देहधारी हो जाता हूँ । यह इस चेतन के बुलबुले की (मेरी) अवस्था है। ऐसी दशा में मुझे यह विश्वास हुआ है कि यह रचना तो भगवान की ही है। यह सब खेल उसी भगवान का है, जिसको चाहे वह सन्त बनाये, भक्त बनाये या असन्त बनाये या अभक्त बनाये, प्रधान मन्त्री बनाये, निर्धन बनाये । ऐसा निश्चय है कि किसी के वश में कुछ नहीं है। जब इस ज्ञान में आरूढ़ होता हूं तो मेरे लिये न आवागमन है न उसकी चिन्ता है न किसी विचार से दुःखी हूं न किसी प्रकार से सुखी हूं। इस 84 साल के अनुभव के बाद मैं इस ज्ञान के नाम की नौकरी समझता हूं। यह ज्ञान जो है, इसका कोई नाम नहीं है। यह जो कुछ टूटे-फूटे शब्दों में वर्णन किया गया वह सच है और यही मेरी समझ में आया है अन्यथा न उसका कोई रूप है, न देह है और न आकार ही है। उसका सम्बन्ध केवल अनुभव से है। हो सकता है कि मेरा अनुभव गलत हो मुझे कोई दावा नहीं है। जिस नाम से मुझे इस पिछली आयु में शांति प्राप्त हुई है, मैं तो वही वर्णन करने का अधिकारी हूँ। अब मैं इस ज्ञान को भूल जाता हूं तब मैं भी औरों की तरह दुःख-सुख में फँस जाता हूँ। मैं गृहस्थी हूँ। लड़के-बच्चे वाला हूँ। किसी - २ समय मेरा भी मार्ग से भटक जाना बड़ी बात नहीं है। परसों की एक घटना है। अगर मुझे यह ज्ञान न होता जिसका मैंने वर्णन किया है, मैं पागल हो जाता। जिसने उसे वर्णन किया है, वह रोता था तथा जोश में आया हुआ था। मैंने उसे ज्ञान के आधार पर समझाया-बुझाया तथा शांत किया।

कहें नानक बिन आपा चीन्हे,
मिटै न भरम की काई ॥

मनुष्य वह है जो कुछ करके बताये। मुंह से बोलने में क्या धरा है। मैं भी विचार करता रहता हूँ कि जगत् कल्याण करूँगा किन्तु कुछ कर नहीं सकता हूँ। माया ने भरम में डाल रखा है। मेरी माया ने मुझे भरमा रखा है। दाता ने मेरी माया को काटा है या मेरे भरम को दूर किया है। यह उनकी दया है। जिसको यह ज्ञान हो गया है कि वह एक बुलबुला है, वह उसकी इच्छा पर रहता है और कहता रहता है मालिक तेरी इच्छा ही मेरी इच्छा है। जिस को चाहे वैसा रखता है। यह तो तेरी ही इच्छा है। मुझे तो अब आवागमन की शंका भी नहीं रही है। मैंने यहाँ तीन सत्संग दिये हैं। आज अन्तिम चोटी का सत्संग दे रहा हूँ किन्तु इन अन्तिम सत्संगों के मुख्य ग्राहक या अधिकारी कहां हैं। तुम यह समझ लो सतसंग दे रहा हूँ, सतसंग कराना तो अपने कर्म का भोग भोगना है। स्वामी जी महाराज कहते है :—

सुनरी सुरत तू मोसे अपना भेद ।
तू मुझमें थी सदा अभेद ॥

सुरत अपने अन्तर में इस प्रकार अभेद थी जिस प्रकार मक्खन दूध में अभेद रहता है। वह दृष्टि में नहीं आता है। ऐसे ही सुरत का हाल है। जब इसको ज्ञान होता है कि वह उस परमतत्त्व का अंश है और इसमें से निकली हुई है तो यह ज्ञान हो जाने के पश्चात वह इसी में समाहित हो जाती है। इसको अभेद होना भी कहते हैं। अभिप्राय यह कि मनुष्य योनि का लक्ष्य प्राप्त होता है। बूंद का समुद्र में मिलना और किरण का सूर्य में समा जाना अन्तिम आवश्यक कृत्य है। इसी प्रकार प्रत्येक सुरत का परमतत्त्व में पुनः प्रवेश कर जाना भी आवश्यक कृत्य हैं चाहे इसको समाहित होने, लय होने की प्रक्रिया में कितना ही समय क्यों न लग जाय। सुरत गति से उत्पन्न होती है।

समय पाकर वह गति से रहित हो जाती है या शान्ति प्राप्त होने पर अपने आधार परमतत्त्व में लय हो जाती है। मेरे भाषण किसी ससय छप जायें तो खोजी या अधिकारी व्यक्तियों को लाभ पहुंचेगा। तुम संसारी लोग हो, तुम किसी ऐसे व्यक्ति को अपने मस्तिष्क में या दिमाग में रखो जो ऊँची अवस्था का हो जिसका मैंने वर्णन किया है। यहाँ अपना कर्म करते रहते हुए किसी सत्पुरुष को अपने मस्तक में रखने से समय पर ऊँची अवस्था को प्राप्त कर सकोगे। यह कर्म भी शीघ्र हो जायेगा बशर्ते कि तुमको इस अवस्था प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होगी। यह एक सुविधाजनक उपाय है जो मैंने सुझाया है। और साथ ही तुम ऐसे भक्तों की और ऐसे सन्तों की और ऐसे विदेह पुरुषों की वाणी पढ़ा करो जिनको यह अवस्था (विदेहगति) प्राप्त हो गई है। ऐसा करने से तुम दु.खी होते हुए भी सुखी रहोगे। यह दु:ख धन्य भाग्य हैं। अगर हम लोग संसार में दु:खी न होंगे तो होश भी न आयेगा। वाणी में कहा है—'काल रचा हम समझ बूझ के बिना काल नहीं होश जीव के' इसलिये तुम लोग घबराना नहीं। हाँ अपना सुधार आप कर लिया करो जिस से इस दु:ख से सदा के वास्ते छुटकारा प्राप्त हो जाय। तुम दूसरों की नकल मत किया करो। सर्वदा अपने व्यक्तिगत अनुभव से ही लाभ उठानें का प्रयत्न किया करो। तुम मुझे देखो मैंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों से ही लाभ उठाया है। दाता दयाल किसी की नकल नहीं किया करते थे।

सन् 1905 में दाता दयाल ने मुझसे कहा था, जब तक तुम अपनी आँखों से न देखो किसी बात का विश्वास मत किया करो। मैंने इसी शिक्षा पर जीवन यापन किया है। इस मालिकेकुल की लीला होकर रहती है या दूसरे शब्दों में जो कुछ होने वाला है वह होकर रहता है। हां! प्रयत्न करना

व्यक्ति का कर्त्तव्य है। आज एक स्त्री मेरे निकट आई, वह कहने लगी बच्चे मेरी आज्ञा नहीं मानते। यह भगवान की लीला है। हर एक अपने - २ कर्मों के अनुसार काम करता है। तुम प्रकृति के नियम का पालन किया करो। शिवसंकल्प रखो। शुभ विचार से ही सम्बन्ध रहे यह ध्यान रखो। जिस पर आदि कर्त्ता की दया होती है उसको ही सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है जिससे वह दु:ख-सुख से ऊपर चला जाता है तथा आत्मसंतुष्टि प्राप्त कर लेता है। आज मैंने बहुत कुछ कह दिया है। मेरा अब चल-चलाव गगन की ओर है। वृद्ध व्यक्ति हूं। किसी दिन भी घर चले जाना है। आप भी मेरे लिए प्रार्थना करें कि मैं अपने काम में सच्चा उतरूँ। मैं आनन्द दयाल या नन्द लाल से कहता हूं कि तू औरतों से बच कर रहना। यह ऐसा मार मारती हैं कि कोई सूरमा या बहादुर ही इनसे बच कर रह सकता है। इस संसार में कोई कुछ बनकर नाच रहा है और कोई कुछ बन कर किन्तु नाच तो सभी लोग कर रहे हैं। केवल ज्ञानी ही दु:खों से बचा हुआ है।

शब्द पढ़ा गया :—

यह जग नाटकशाला, साधो यह जग नाटकशाला।
राजा रंक फकीर औलिया, दृश्य विचित्र विशाला ॥
कोई ओढ़े शाल दुशाला, कोई सिर कंबल काला।
सुरत ने अद्भुत भेष बनाये, नाचैं नाच रसाला ॥
गावैं भाव दिखावैं छिन - छिन, खेलें खेल निराला।
ब्रह्मा वेद से रचा जगत् को, विष्णु गदा ले पाला ॥
शिव संहार का नाच सजावें, साथ भूत बैताला।
नाचें कमला दुर्गा शारद, काली छवि विकराला ॥

सावित्री का राग गायत्री, सैन बैन का जाला ।
शंखनाद की घूम मची है, डमरू शोर कराला ।।
रारंग, सारंग बजी सरंगी, बैन सितार सुहाला ।
श्रुति धुनि है उदगीथ है वाणी, ओम् - २ का ताला ।।
श्रोतागण सब सुनने आये, मन में भये बेहाला ।
साधू द्रष्टा साक्षी रूप हैं, सुख दुःख मन से टाला ।।
जिसने अपना रूप बिसारा, उर उपजा दुःख साला ।
साक्षी देखें खेल तमाशे, चित्त रहे सुखी सुखाला ।।
भूल भरम में जो कोई आया, सहै भरम का भाला ।
रैन का सपना जग की लीला, सुपना धन और माला ।।
आँख खुली तब कुछ नहीं दरसा, गुप्त जो देखा भाला ।
राधास्वामी सन्तरूप धर आये, दीनबन्धु सो दयाला ।।
प्रेम पियाला हमें पिलाया, सहज किया मतवाला ।।

जो कुछ मैंने कहा है इस शब्द ने भी इसकी पुष्टि कर दी है। यह दाता दयाल महर्षि श्री शिवव्रत लाल जी महाराज की वाणी है । आज मैं प्रसन्न हूं कि जो अनुभव इस जीवन में आये हैं, यही दाता दयाल का शब्द है । यह शब्द सन् 1921 में शिवरात्रि पर लिखा गया था, जो मेरे अनुभवों से मेल खाता है ।

"वन्दनम् सदज्ञानदाता वन्दनम् सतज्ञानमय" ।

सत्संग परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज

(24-2-1987 अलीगढ़, सायंकाल)

卐 सद्गुरु की दया 卐

सतगुरु परम दयाल री कोई कदर न जाने।
देह धरें जीव भार उठावें, यम का जाल री ।।
जीव अनाड़ी जग झक मारें, दु:ख सुख संग बेहाल री ।।
दया मेहर से निज वचन सुनावें मेटें घर दु:ख साल री।
छूटन की वह युक्ति बतावें, घट में चलावें चाल री।
दया मेहर से करनी करावें, करदें मालामाल री ।
घट के बैरी सभी नसावें, मारें काल कराल री।
निस दिन तेरी दया विचारें, जस माता संग बाल री।
अन्त समय जब तेरा आवे, आप हुए रखवाल री।
घट तेरे में प्रगट करावें, अपना रूप विशाल री।
पकड़ चरन तू निज घर जावे, काल करम पामाल री।
राधास्वामी सतगुरु मोहि अस भेंटे,
हो गई मैं खुश हाल री ।।

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश सत्संगी भाइयो और बहनो, जब से यह दुनिया बनी है और जब से मानव होश में आया है उसके अन्तस् में ऐसी प्रेरणा, ऐसी जिज्ञासा, ऐसी तड़प पैदा हुई है कि वह ऐसे सुख की प्राप्ति करे, ऐसे आनन्द की प्राप्ति करे जो उससे कभी छिन न पाये। वैसे तो पशु भी हमेशा सुख की इच्छा करते हैं। कोई भी व्यक्ति, कोई भी प्राणी यह नहीं चाहता कि उसे दुःख मिले। उसके सभी कर्म उसके सभी विचार, उसके सभी भाव इसी तरफ लगे रहते हैं कि उसे सुख मिले, दुःख न मिले। उसकी सभी इच्छाएँ व भावनायें ऐसी हों, जो उसे दुःख से बचाकर सुख का अनुभव कराती रहें।

उसके सभी संकल्प सुख के लिए होते हैं। मनुष्य में और पशु में यही अन्तर होता है कि मनुष्य द्वारा किया हुआ कर्म संकल्प के आधार पर, भावनाओं पर आधारित और प्रेरणाओं से प्रेरित होता है। लेकिन पशु इन सबसे वंचित हैं। पशु के द्वारा किया गया कर्म मूल-प्रवृत्तियों पर आधारित है। मूल-प्रवृत्ति क्या है? मूल-प्रवत्तियाँ हमारे अन्दर एक प्रकार की शक्तियां हैं जिनका प्रयोग करके हम अपने जीवन को सुखी बनाने की कोशिश करते हैं। जैसे खाना, भूख लगना। भूख मूल-प्रवृत्ति है और भूख की मूल-प्रवृत्ति हरएक पशु, प्राणी के अन्दर मौजूद है। भूख लगती है तो हम खाना खाते हैं और वह खाना हमारे जीवन को बनाये रखता है। मनुष्य और पशु के अन्दर भूख की प्रवृत्ति होती है, भय की प्रवृति भी होती है। भय इसलिए कि अपनी जान को बचा सकें। मनुष्य भी अपनी जान बचाता है और पशु भी। भय की प्रवृत्ति उसकी जान की रक्षा करती है। इसी प्रकार

क्रोध की प्रवृत्ति उसके अहंकार का पोषण करती है। क्रोध के द्वारा, शत्रु से लड़कर अपनी जान को बचाया जा सकता है। यह बात नहीं कि क्रोध नहीं होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति क्रोध से मुक्त नहीं है। हाँ उस क्रोध की प्रवृत्ति का रूप बदला जा सकता है। जिस बच्चे के अन्दर क्रोध की प्रवृत्ति ज्यादा होती है वह लड़ता-झगड़ता रहता है। माता-पिता व अध्यापक उसे कोसते ही रहते हैं। जिससे उसका विकास नहीं हो सकता है। क्रोध की प्रवृत्ति जिसके अन्दर अधिक है वह गणित का विद्वान् बन सकता है क्योंकि क्रोध में शक्ति होती है। काम की प्रवृत्ति भी शक्ति है। काम की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उसको प्रेम में परिवर्तित करके, गृहस्थ का जीवन व्यतीत करके मनुष्य बच्चों को जन्म देता है। इन प्रवृत्तियों का रूपान्तर हो सकता है। सन्त के अन्दर काम की प्रवृत्ति का ऐसा रूपान्तर होता है कि सन्त का काम, काम नहीं रहता। उसके काम की शक्ति विश्व प्रेम में, जगत् प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। इसी प्रकार काम की प्रवृत्ति भी शक्ति है, जैसे जहाज के अन्दर वाष्प की शक्ति होती है लेकिन उस शक्ति का नियन्त्रण करके जहाज को ठीक रास्ते पर चलाया जा सकता है। इसी प्रकार आत्म प्रकाशन की अथवा अपने आपको प्रकाशित करने की प्रवृत्ति होती है। ये मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियां हैं। ये मूल-प्रवृत्तियां जन्मजात होती हैं। इनको सीखने या सिखाने की आवश्यकता नहीं होती। वैसे मनुष्यों में धन इकट्ठा करने की, रचना करने की, ध्वंस करने की भी प्रवृत्तियां होती हैं। ये जो प्रवृत्तियां हैं, सब शक्तियां हैं। ये मूल-प्रवृत्तियां पशओं में भी होती हैं परन्तु एक प्रवृत्ति ऐसी है, जो पशुओं में नहीं होती और वह है हंसने की प्रवृत्ति। पशुओं में भूख की प्रवृत्ति, काम की प्रवृत्ति, क्रोध की प्रवृत्तियां होती हैं परन्तु पशु तो घास खाकर

गुजारा कर लेता है। लेकिन मनुष्य ने भोजन की प्रवृत्ति को इतना बढ़ाया कि कमाल कर दिया। मनुष्य कितने प्रकार के व्यंजन बनाता है। सब्जियों में घी, मसाले डालकर उन्हें खूब भून - २ कर खाता है और फिर बीमार हो जाता है। कभी पशु को भी बीमार होते देखा है क्या? आजकल लोग मीट खाते हैं। मांस न खाना शान के खिलाफ समझा जाता है। पशु का मांस खाने से मनुष्य पशु जैसा बन जाता है। मैं आपको एक वैज्ञानिक बात बता रहा हूँ। जब पशु को काटने के लिए लाया जाता है और कसाई जब उसे काटने के लिए आगे बढ़ता है तो उस समय उस पशु के अन्दर कैसी भावनाएँ होंगी? पशु के अन्दर कसाई के प्रति नफरत की भावना होगी, क्रोध की भावना होगी, भय होगा। इन सब भावनाओं का जहर, भावनाओं की Radiation पशु के शरीर में फैल जाती है। जब उस पशु का मांस मनुष्य खायेगा तो मनुष्य कायर होगा, भीरु होगा, क्रोधी होगा, नफरत करेगा। जो लोग शाकाहारी होते हैं वह कायर नहीं होते हैं। आज के युग में मनुष्य की भोजन ढूंढने की प्रवृत्ति अप्राकृतिक हो गई है, वह स्वाभाविक नहीं है। कृत्रिम हो गई है, बनावटी हो गई है। मनुष्य मांस को मसालों में भून - २ कर खाता है, जोकि उसकी प्रकृति व स्वभाव के विरुद्ध है। इसी कारण से हमारी उम्र कम है और बीमारियां अधिक हैं। अमेरिका के अन्दर कुछ ऐसे लोग हैं जो शाकाहारी हैं और कच्ची सब्जी खाते हैं। मैंने आपको प्रसंगवश बताया कि मनुष्य और पशु दोनों में भोजन ढूंढने की प्रवृत्ति है। लेकिन मनुष्य ने उसे अप्राकृतिक तथा अस्वाभाविक बना लिया है। लेकिन इन्हीं प्रवृत्तियों को, इन्हीं शक्तियों को अगर समेट कर, एक तरफ उसका रूपान्तर कर दिया जाये तो यही शक्ति स्वास्थ्य को भी बढ़ायेगी, मन को सुख देगी और आत्मा को आनन्दित

करेगी। इसीलिए बार बार कहा जाता है कि सात्त्विक भोजन खाओ। इन सब मूल-प्रवृत्तियों का आशय यह है कि मनुष्य और प्राणी दोनों सुख की चेष्टा करते हैं। कोई भी दु:ख को सहना नहीं चाहता बल्कि सभी जो इच्छाएँ हैं, किसी न किसी सुख के लिए होती हैं। किसी चीज की इच्छा करना या उसको सुखद मानना, किसी चीज की अनिच्छा करना या उसको दु:खद मानना एक ही बात है। यह एक ही अनुभव के दो पहलू हैं। मनुष्य को और पशु को प्रकृति ने ऐसे राज्य में फैंक दिया है, जहाँ सुख और दु:ख के आधार पर उसकी सभी प्रवृत्तियां और क्रियाकलाप घटित होते हैं। यह बात सही है कि मनुष्य सुख को ढूंढ़ता है। मनुष्य के अन्दर विवेक है। वह अपनी इन प्रवृत्तियों को जब बुद्धि के साथ जोड़ देता है तो उसका व्यवहार बदल जाता है। मनुष्य ने अधिक से अधिक सुख पाने के लिए सब अरखंजे खड़े कर लिए हैं, जैसे हर तरीके से ज्यादा पैसा कमाना, आराम की वस्तुएँ एकत्रित करना। लेकिन मनुष्य को इस बात का ज्ञान नहीं है कि असली सुख कहाँ और कैसे मिलेगा? ऋषियों ने और सन्तों ने मनुष्य को परम सुख प्राप्त कराने की कोशिश की। उन्होंने देखा कि मनुष्य के अन्दर जो सुख प्राप्त करने की प्रवृत्ति है, जो सुख का स्रोत है वह बाहर नहीं है बल्कि उसके अन्दर है। मनुष्य के सुख का स्रोत उसके अन्तस् में है और वह स्रोत है मनुष्य की सुरत, वह है उसका अविनाशी भाव जो वह अपने साथ लेकर आया है। सुरत सुख का स्रोत है। सुरत किसे कहते हैं? सुरत आत्मा या जीवात्मा को कहते हैं। वैसे 'सुरत' के लिए जीवात्मा शब्द उचित नहीं है। सुरत हमारे शरीर के अन्दर एकस्थानी भी है और सर्वस्थानी भी है। वह दोनों भौंहों के बीच में रहती है।

और वही शक्ति का स्रोत है। यह शक्ति जब ऊपर से आती है तो मंडल बनाती चली आती है। शक्ति आई, फिर शब्द आया उसके बाद प्रकाश आया फिर भू: भुव: स्व: मह: जन: तप: सत्यं मंडल बने। सुरत का मतलब होता है ध्यान। जब इस शक्ति को हम विचार से, ध्यान से नीचे ले जाते हैं, तो यह नीचे के मण्डलों में फैल जाती है। नीचे का मण्डल है आज्ञा चक्र या आज्ञा शक्ति। उसके बाद कंठ मंडल है, जो आकाश का स्थान है फिर हृदय का मण्डल है, जो वायु का स्थान है, जो शिव अनाहद, शब्द की शक्ति है। शंकर इसके अधिष्ठाता हैं। जब यह शक्ति नाभि में आती है तो अग्नि का रूप धारण कर लेती है। अग्नि का रूप है विष्णु। नाभि के स्थान से चलकर शक्ति स्वाधिष्ठान चक्र में जाती है, जहाँ पर हमारे वीर्य का स्थान है और जो जल तत्त्व कहलाता है। जल तत्त्व का अधिष्ठाता ब्रह्मा है। स्वाधिष्ठान चक्र के बाद यह शक्ति गुदा चक्र में आकर के स्थूल हो जाती है और सो जाती है। उस समय यह पृथ्वी तत्त्व हो जाती है। पृथ्वी तत्त्व का अधिष्ठाता गणेश है। ये सभी चक्र हमारे अन्दर हैं। इस शक्ति को कुण्डलिनी शक्ति भी कहते हैं। इस शक्ति को जब व्यापार में लगा दिया जाए तो व्यक्ति एक बहुत अच्छा व्यापारी बन सकता है। अगर कोई इस शक्ति के मालिक से मिलना चाहे तो यही शक्ति उसको ऊपर ले जायेगी और उस आधार से, उस दयाल से मिला देगी जहाँ असली सुख है।

सभी मतों ने उस सिद्धान्त को, उस तरीके को बताने की भरसक कोशिश की है जिससे आप परमतत्त्व को प्राप्त कर सकें। इन सब मतों में सन्तमत आखिरी है। सन्तमत सरल से सरल रास्ता आपको बताता है। सन्तमत में सद्गुरु मनुष्य रूप में आकर के सरल से सरल रास्ता बताता है। सद्गुरु परमदयाल है और परमदयाल होने के कारण ही वह आपको

ऐसा सहज रास्ता बताने को तैयार है जिससे आप ऊपर परम-तत्त्वाधार तक पहुंच सकते हैं। लेकिन इस मार्ग के ग्राहक बहुत कम हैं। इस शब्द से यही बात स्पष्ट की गई है :—

सतगुरु परम दयाल री कोई कदर न जाने ।
देह धरें जीव भार उठावें, काटं यम का जाल री ॥

इस जगत् में सब जीव उस परमतत्त्व से आये हैं लेकिन जीवों ने शरीर में आकर के अपने आपको शरीर से बाँध लिया है। जीव इस शरीर में रहते हुए, इस बात को भूल गये कि उनका असली घर तो 'परमधाम', 'राधास्वामी धाम' में है। जहाँ पर सुख-दु:ख, लाभ-हानि सब समाप्त हो जाते हैं। जीव अज्ञानी होने के कारण अपना रास्ता भूल गये हैं। वे स्वयं ही कर्मों का जाल, भव का जाल बना रहे हैं। कोई बाहर की शक्ति कुछ नहीं कर सकती है। हम अपनी इच्छाओं को स्वयं ही बढ़ाते चले जाते हैं। जैसे कि मैंने भोजन के बारे में कहा कि अगर भोजन आपका सरल है, सात्त्विक है तो आपका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा और आपकी उम्र भी लम्बी होगी। लेकिन हम तरह-२ के व्यंजन खाते हैं। होटल में सौफ्टी आइसक्रीम खाते हैं तो हम स्वयं ही अपने कर्मों के जाल को बना रहे हैं। भर्तहरि ने कहा है "एक पतंगा अज्ञानी होने के कारण चिराग पर जाता है। वह समझता है कि चिराग में जलने वाली बत्ती उसे सुख देगी लेकिन अन्त में पतंगा व्यथित होकर जल मरता है"। पतंगा भले ही ऐसा करता है लेकिन हम मनुष्य, जो मानव हैं, जानते हैं कि जितनी इच्छाओं को बढ़ायेंगे, उतना हमें दु:ख होगा और इन इच्छाओं में फँसकर हम मोह के जाल में फँस जाते हैं। हम उनको छोड़ नहीं पाते हैं। इसका क्या कारण है ? इसका कारण है कि हम शरीर को ही सब कुछ माने बैठे हैं, मन को ही सब

कुछ माने बैठे हैं और लापरवाही की शराब को पी करके मोह से युक्त हैं। मोह में फँसे हुए हैं। जैसे नशा करने वाला आदमी मस्त हो जाता है, उसे कुछ होश नहीं रहता। उसे यह पता नहीं चलता कि वह किस से बात कर रहा है। इस मोह जाल को काटने के लिए ही परमतत्त्वाधार दया से मनुष्य का रूप धारण करके आता है और सरल से सरल तरीका बताता है। वह मनुष्य के रूप में ही आकर के तरीका बता सकता है। अपने निजधाम में बैठा हुआ परमतत्त्व हमारा कोई काम नहीं कर सकता। मैं क्या कह रहा हूँ ? मेरी बात को समझो। दयाल अपने निजधाम में बैठा हुआ बात-चीत नहीं कर सकता। आपको सरल तरीका नहीं बता सकता। इसलिए ही दयाल पुरुष दया करके, आपको बचाने के लिए मनुष्य के रूप में आता है लेकिन तुम उसे पहचानते नहीं हो। वह तो तुम्हें सहज में ले जाने के लिए आता है :

तुलसी दास जी ने कहा है :—

वन्दौं गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुन्ज जासु वचन रवि कर निकर॥

तुलसीदास जी कहते हैं "मैं गुरु के कमलरूपी चरणों को नमस्कार करता हूँ।" अरे सिर्फ उस गुरु को नमस्कार करने मात्र से ही आपके सारे काम बन जायेंगे। "कृपा सिन्धु नररूप हरि" भगवान को तुलसी दास जी ने कृपासिन्धु क्यों कहा है ? इसलिए कि परमतत्त्व केवल मनुष्य के रूप में ही जीव के प्रति दया दर्शा सकता है। जब वह मनुष्य के रूप में ही नहीं है और ऊपर बैठा हुआ है तो उसका दया का सागर कैसे उमड़ेगा ? कभी -२ लोग तंग आकर कहने लगते हैं, भगवान कहाँ है ? अगर भगवान होता तो यहाँ जरूर आता। परन्तु जब वह आता है तो तुम उसे पहचानते

नहीं हो। उसकी कदर नहीं करते हो। जब वह मनुष्य के चोले में आता है तब वह कृपासिन्धु हो जाता है। मनुष्य के चोले में आकर परमतत्त्व मनुष्य के दुःखों का सच्चा अनुभव करता है। वह जानता है कि पीड़ा क्या होती है? "घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय"। वह परमतत्त्वाधार दयाल देश से, अपने निजधाम से, अपने आराम को छोड़कर आपके दुःख-दर्द को महसूस करने के लिए आता है। इस जगत् में आकर के वह मानवीय दुःखों को सहन करता है। इसलिए करता है ताकि वह खुद इस जगत् की जेल में आकर के, बन्धुआ बन करके, बन्धुओं को छुड़ाकर ले जाये। धन्य है वह मालिक जिसने मुझे ऐसे परिवार में जन्म दिया है जहाँ धार्मिक वातावरण था। मेरे पिता जो गीता पढ़ते थे वह बड़े दयालु स्वभाग के थे। मुल्तान शहर के माने हुए अंग्रेजी और गणित के अध्यापक थे। उन्होंने अपना प्राइवेट स्कूल चलाया हुआ था। 1930 में उनकी 1500 रु. महीने की आमदनी थी। वह गली, मोहल्ले वाले लोगों पर भी खर्च कर देते थे। मुझे याद है जब मैं छोटा सा था तो मेरे साथ बच्चे खेलने के लिए आते थे। अगर कोई खोमचे (गोलगप्पे वाला) आ गया तो सारे बच्चों को वह अपने पास से ही पैसे देकर खिलाते थे। उन्होंने अपने जीवन में किसी को नुकसान नहीं पहुंचाया। वह प्रातःकाल भजन गाते थे :—

"उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥
उठ नींद से अँखियाँ खोल जरा, और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं, रब जागत है तू सोवत है॥"

रब तुम्हारे अन्दर जाग रहा है। तुम्हारे बड़े अच्छे

भाग्य हैं, जो तुम यहाँ बैठकर मेरे वचनों को सुन रहे हो। जब तुम स्वप्न में चले जाओगे तब भी रब जाग रहा है। जब तुम गहरी नींद में सो रहे होते हो तब भी वह जाग रहा होता है। बचपन से ही इस प्रकार के संस्कार मेरे अन्दर थे, जिस से मैं आगे बढ़ा। बचपन से ही मालिक से मिलने की कुरेद मेरे अन्दर थी। आगे चलकर जब मैं परम दयाल जी के सम्पर्क में आया तो मेरे अन्दर एक विस्फोट हुआ और मैंने देखा कि मनुष्य के चोले में वह तो सद्गुरु थे। मैं आपको बचपन की एक बात बताना चाहता हूँ-इतना अच्छा परिवार होते हुए, इतना पैसा होते हुए भी एक समय ऐसा आया जब मेरे पिताजी ऊपर सीढ़ियों से गिर गये। उनको गहरी चोट लगी और उनकी स्मृति जाती रही जिसके कारण हम गरीब हो गये। यह बहुत अच्छा हुआ कि हम गरीब हो गये। कभी ऐसा भी समय होता था जब घर में खाना भी नहीं होता था। अगर हम गरीब न हुए होते तो मैं आज आपकी पीड़ा को कैसे जान पाता? इसलिए जब सद्गुरु पृथ्वी पर आता है वह इस जगत् के दुःख और सुख दोनों को लेकर आता है। मनुष्य की तरह वह भी सुख, दुःख का अनुभव करता है परन्तु उसकी वाणी आपके हर प्रकार के मोह को दूर करती है। अपनी वाणी से वह उसी प्रकार आपके हर प्रकार के मोह को दूर हटा देता है जिस प्रकार सूर्य की किरणें काले बादलों को हटा देती हैं। यही सारी बात आजके इस शब्द में है:

"सतगुरु परम दयाल री, कोई कदर न जाने।
जीव अनाड़ी जग झक मारें, दुःख सुख संग बेहाल री।"

जो जीव हैं वे अपने अज्ञान के कारण ही अपना-२ बोझ बढ़ाते चले जा रहे हैं। इस जगत् के अन्दर जीव उस

चीज को ढूँढ़ते हैं जिसके पाने से सब दुःख समाप्त हो जायें। अपने में विश्वास न रख करके कभी देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, कभी किसी पीर की मज़ार पर चादर चढ़ाते हैं, कभी किसी मन्दिर में जाते हैं, लेकिन उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। वे पैसा कमा कर मकान बनाते हैं, टी. वी. खरीदते हैं तथा दुनिया के आराम की चीजें खरीदते चले जाते हैं लेकिन इन चीजों से भी उनका दुःख समाप्त नहीं होता है। मनुष्य जितनी चीजें इकट्ठी करता चला जाता है, उन चीजों के नष्ट होने पर फिर वह दुःखी होता है क्योंकि ये सब चीजें नाशवान हैं। इसलिए कहा गया है:—

'दुःख सुख संग बेहाल री'

केवल सद्‌गुरु ही तुम सबको आसान तरीक़े से इन झमेलों से बचाकर ले जा सकता है लेकिन सद्‌गुरु की कोई कदर नहीं जानता :—

'दया मेहर निज वचन सुनावें, मेटें घट दुःख साल री'।

सद्‌गुरु अपने अनुभव के आधार पर वचन सुनाते हैं। यदि सद्‌गुरु के वचनों पर अमल करेंगे तो सहज में ही आप के घट के सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे। सद्‌गुरु के वचन हैं सत्संग। सत्संग में सहज में ही ज्ञान हो जाता है :—

'सब ही सुलभ सब दिन सब देसा,
सेवत सादर समन कलेसा ॥"

आपको कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। आप केवल गुरु को प्यार करो। प्यार क्या है? प्यार है सत्संग में आ कर के ध्यान से गुरु के वचनां को सुनना और उन पर अमल करना। सत्संग हर समय, हर जगह, हर देश में और हर व्यक्ति को मिल सकता है। लेकिन आपको सत्संग में अदब

से, प्रेम से बैठना है। सत्संग में प्रेम से बैठने से जितने भी आपके कष्ट हैं, क्लेश हैं वे सब समाप्त हो जाते हैं लेकिन कोई कदर नही जानता :—

'छूटन की वह युक्ति बतावें, घट में चलावें चाल री।'

जगत् के गोरखधन्धे से छूटने की कई युक्तियाँ बताई गई हैं। सतयुग में ध्यान की युक्ति थी। त्रेतायुग में यज्ञ थे। द्वापर में पूजा - पाठ था। अब इस जगत में कैसे ध्यान लगायें? यज्ञ भी नहीं किये जा सकते, पूजा भी नहीं की जा सकती। इसलिए इस युग के अन्दर आपको आसान से आसान युक्ति बताई गई है और वह युक्ति है, केवल सद्गुरु के सत्संग में आकर के सत्संग सुनना और उस पर अमल करना सद्गुरु से कोई रिश्ता पैदा करो। उससे प्रेम करो। भाई मानकर, पिता मानकर, किसी भी रिश्ते से उसे नमस्कार कर दो। नमस्कार करने से आपके सब काम बन जायेंगे :-

दया मेहर से करनी करावें, करदें मालामाल री।

सद्गुरु ऊँचे सत्य को जानकर के आपको अनुभव कराता है। आपकी परिस्थिति के मुताबिक, आपके माहौल के मुताविक, सद्गुरु आपके घट के अन्दर धीरे - २ ऐसी चाल चलाता है जिससे आपको मालिक के दर्शन हो जायें। आपके माहौल के मुताविक आपको वह अवस्था मिल जायेगी जिसके लिए ऋषि, मुनि यत्न करते रहते हैं :—

कोटि - कोटि मुनि यत्न कराहीं।
अन्त राम कह आवत नाहीं।

लेकिन इस आसान तरीके को कोई अपनाने वाला नहीं है :-

'घट के बैरी सभी नसावें, मारे काल कराल री।'

मन के बैरी क्या हैं ? मन के बैरी हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। मैंने आपको बताया कि काम की भी शक्ति है। यदि इस काम की शक्ति का रूपान्तर कर दिया जाये तो यह शक्ति आपको मालिक की तरफ ले जायेगी। रूपान्तर क्या होता है ? किसी भी चीज़ का रूप बदल देना। जैसे पानी का मार्गान्तरीकरण किया जा सकता है और रूपान्तर भी किया जा सकता है। मार्गान्तरीकरण क्या है ? मार्गान्तरीकरण का मतलब है मार्ग को बदल देना। जैसे यदि पानी एक जगह भरा हुआ है तो यह पानी अगर वहाँ रहेगा तो सब जगह पर बाढ़ आ जायेगी। यदि इस पानी को नहरों में निकाल दिया जाये तो रेगिस्तान के अन्दर भी हरियाली हो सकती है। लेकिन इससे ज्यादा अच्छा तरीका यह है कि पानी की जो शक्ति है, उस पानी को भाप में परिवर्तित करके कल-कारखाने चलाये जा सकते हैं। इसी प्रकार यदि काम की प्रवृत्ति को गृहस्थ में लगाया जाए और काम प्रेम में परिर्वातत हो जाये तो घर स्वर्ग बन सकता है। घर को नरक बनाने वाली स्त्री है। अगर स्त्री प्रेम का वातावरण रखे तो पति उसका सौ साल तक जीयेगा। उसके अन्दर कभी अशान्ति नहीं होगी। काम को प्रेम में पतिर्वातत करना मार्गान्तरीकरण है लेकिन काम का रूपान्तर होता है, कवि के अन्दर, दार्शनिक के अन्दर और सन्त के अन्दर। तुलसीदास इतने कामी थे कि अपनी पत्नी के पीछे-पीछे अपने ससुराल गये मुर्दे पर बैठकर नदी को पार किया। साँप को पकड़ कर फाटक पार कर गये। जब पत्नी के पास आधी रात को पहुंचे तो पत्नी ने कहा :—

"लाज न आवे आपको दौड़े आए साथ।
धिक् - २ ऐसे प्रेम को कहा कहूँ मैं नाथ॥"

आप जितना मोह मेरे से करते हैं यदि इतना मालिक से प्रेम करते तो आपका बेड़ा पार हो गया होता। इतनी बात सुनकर तुलसी दास जी चेत गये और उन्होंने अपनी प्रवृत्ति मालिक की तरफ लगा दी। तुलसी दास महान् कवि सन्त शिरोमणि हो गये। सन्तों के अन्दर काम की प्रवृत्ति का रूपान्तर हो जाता है। वह सद्गुरु जिसका खुद रूपान्तर हो चुका हो, वह तुम्हारी इस प्रवृत्ति को सन्त भाव के अन्दर बदल सकता है। सद्गुरु वह नहीं है जो कान में उँगली डालकर बैठा रहे और कुछ अनुभव नहीं करे :—

'निशदिन तेरी दया विचारें, जस माता संग बाल री।'

दाता दयाल जी महाराज सद्गुरु की बात कर रहे हैं सद्गुरु वक्त की बात कर रहे हैं। सन्त बहुत होते हैं लेकिन सद्गुरु वक्त एक होता है। सद्गुरु वक्त दया का सागर होता है। वह अपनी दया को बहाने के लिए हो आता है। वह अपनी दया को ऐसा बहाता है जैसे माँ बच्चे को प्रेम करती है। माँ का बच्चे से जो प्रेम होता है वह निःस्वार्थ होता है। वह बच्चे पर अपनी जान दे देती है पर बच्चे पर आँच नहीं आने देती। सद्गुरु भी माँ जैसा ही होता है। तुम उससे प्यार करते हो, वह तुम से भी ज्यादा तुम्हें प्यार करता है। अरे! उसे तो तुम्हारा रात-दिन ध्यान रहता है। जब तुम उससे प्रेम करते हो तो उसकी दया का सागर, प्रेम का समुद्र इतना बहता है जिसका कोई हिसाब नहीं। सद्गुरु का प्यार निःस्वार्थ होता है। उसका प्यार तुम्हारे दूसरी तरह के प्यार को आगे बढ़ायेगा। जब किसी भी परिवार का एक व्यक्ति भी सदगुरु की शरण में आ जाता है तो सारा परिवार तर जाता है। वह सारे कुटुम्ब का ध्यान रखता है।

'अन्त समय जब तेरा आवे, आप हुए रखवाल री।'

कहा जाता है कि अन्त समय में गुरु आता है। गुरु कैसे आता है ? गुरु ने जो आपको संस्कार दिये हैं, आपको जो सच्चाई बताई है, उनका ही आपको रूप भी प्रकट होगा और गुरु का रूप आपको प्रकाश में ले जायेगा। लेकिन जिस गुरु ने यह सच्चाई नहीं बताई तो ऐसे गुरु का शिष्य गुरु के स्थूल शरीर को ही प्रेम करते हुए मरेगा और फिर जन्म लेगा। चूँकि गुरु ने सच्चाई नहीं बताई है इसलिए गुरु को भी दुनिया में वापस आना पड़ेगा। लोगों को महाराज जी का रूप प्रकट होता था। अब मेरा भी होता है। मेरा रूप लोगों के काम कर देता है। लेकिन मैं कहता हूँ कि मैं नहीं जाता, तुम्हारा विश्वास ही काम करता है। यदि मैं कहूं कि हाँ मैंने प्रकट हो कर आपकी मदद की तो मैं अपने साथ तथा आपके साथ कितना बड़ा अन्याय करूंगा। मैं महाराज जी की आज्ञा का पालन करने के लिए ही यह काम कर रहा हूँ। महाराज जी की आज्ञा का पालन करना ही वास्तव में सन्त-भाव को पैदा करना है। मैं क्यों कह रहा हूँ कि तुम जिस को रूप समझे बैठे हो, वह मेरी छाया हो सकती है, Radiation हो सकती है। लेकिन मैं वह नहीं हूँ। अगर मेरी Radiation को मानकर के, मेरी छाया को मानकर के तुम मेरा रूप प्रकट कर सकते हो और तुम्हारी जान बच सकती है तो यदि तुम मुझे परमतत्त्व मानोगे तो कहाँ जाओगे ? तुम वहीं जाओगे जहां मेरा असली निजरूप है। जहाँ से मैं आया हूँ, जो मेरा निजधाम है, जो तुम्हारा धाम है। मैं तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ। यह असलियत तुम्हारे विश्वास को बढ़ायेगी, कम नहीं करेगी। इसलिए जिसको मालिक ने सद्-गुरु का काम करने के लिए भेजा है या जो सद्गुरु का काम करता है,उसे चाहिए कि वह सच्चाई बताये। अन्त समय में वह रखवाली कैसे करेगा ? जब सद्गुरु की बताई गई

सच्चाई से तुम्हारा मन साफ हो जायेगा और अन्त में गुरु का रूप प्रकट होगा। महाराज जी कहते थे "मैं तो सच बोल चुका। मैं तो नीचे आऊंगा नहीं।" यदि आप ऐसे गुरु का ध्यान करते हो तो उसकी टाँग को पकड़े हुए हो, लेकिन उस की असलियत तो ऊपर है, इसलिए तुम्हें ऊपर जाना पड़ेगा। जिसने झूठ बोला है वह भी नीचे आयेगा और तुम भी नीचे आओगे। मैं यह भेद बताना चाहता था। होशियारपुर में एक माई है। उसका पति महाराज जी के पास आता था। जब मैं आया तो मेरे पास भी आने लगा। जब वह मरने लगा तो उसने कहा 'मानवदयाल जी हाथी लेकर मेरे पास आये हैं।' अब मैंने सोचा कि हाथी का क्या मतलब है? जब मैंने अपने अन्तस् में देखा तो मुझे यह आवाज आई 'मरने वाला व्यक्ति मेरे सत्संग में आता था' और हाथी है ज्ञान का प्रतीक, गणेश का प्रतीक। तो जो ज्ञान उसे सत्संग में मिला वह हाथी बन कर आया। मैं आपको यह भेद बताना चाहता था। तो अन्त समय में वह इस प्रकार रखवाली करता है लेकिन उसकी कोई कदर नहीं जानता।

"घट तेरे में प्रगट करावे अपना रूप विशाल री।
पकड़ चरन तू निजघर जावे, काल करम पामाल री॥"

तुम्हारे मन के अन्दर वह अपना विशाल रूप भी दिखाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को भी विराट् रूप दिखाया था। वह घट के अन्दर असली निजरूप दिखाता है और उसे अपने जैसा बना लेता है। इसलिए उसके चरण को पकड़े रहो। वह तुम्हें सीधा तुम्हारे निजधाम ले जायेगा :—

'राधास्वामी सतगुरु मोहि अस भेंटे, हो गई मैं खुशहाल री।'

ऐसे सत्गुरु से प्रेम करने से काल करम पामाल समाप्त हो जाता है। जो काल आपको दुःख देता है, जो आपके

प्रारब्ध कर्म आपको दु:ख देते हैं उनका रूप बदल जाता है। सद्गुरु तुम्हारे कर्म स्वप्न में भी कटवा देता है। यदि तुम उसके चरण पकड़े रहोगे तो अपने निजघर पहुंच जाओगे। उसके आगे झुको, अपने अहंकार को हटाओ। नि:स्वार्थ प्रेम करो। प्रेम करने से तुम वैसे ही बन जाओगे, जिससे तुम प्रेम करते हो। परमतत्त्व प्रेम है जो मनुष्य के रूप में आता है। इसलिए कहा है :—

राधास्वामी सद्गुरु मोहि अस भेंटे, हो गई मैं खुशहाल री।

राधास्वामी सद्गुरु मुझे ऐसे मिले कि मेरे शरीर को स्वस्थ कर दिया, मेरे मन को सुखी कर दिया; मेरी आत्मा को आनन्दित कर दिया और मेरी सुरत को दयाल देश में पहुंचा दिया। मैं ऐसे अनुभवी सद्गुरु की, राधास्वामी अवस्था में रहने वाले सद्गुरु की बात कर रहा हूँ। बाकी जो डेरे बनाने वाले गुरु हैं, वे सद्गुरु नहीं हैं। मैं किसी की निन्दा नहीं करता। हरएक के अन्दर परमतत्त्व है। जिनके डेरे बनें हैं उनके अन्दर भी परमतत्त्व है। लेकिन वे लोगों को धोखा दे रहे हैं, जब वे कहते हैं कि हमारा रूप प्रकट होगा इसलिए तुम डेरे को पैसा दो। लेकिन राधास्वामी सद्गुरु ऐसे मिले जिन्होंने मुझे हर प्रकार का प्रसाद देकर खुशहाल कर दिया। राधास्वामी का यही अनुभव जो परम दयाल जी ने आपको बताया, उसी अनुभव को मैं और विस्तार रूप में सच्चे दिल से अपने अंशों को बता रहा हूँ। आप सब मेरे अंश हो, बिखरे हुए अंश। मुझे बिखरे हुए अंशों को निखारने के लिए बुलाया गया है और मुझे हुक्म दिया गया है कि मैं अनुभव के आधार पर ऐसा सत्संग दूं जिससे आप लोगों के लोक और परलोक दोनों बन जायें। ऐसी सच्चाई बयान करना कि राधास्वामी कोई अलग फ़िरका नहीं है। राधास्वामी

हालत है। राधास्वामी ऐसा तरीका है, ऐसी विधि है, जिसके ज़रिये हम कालकर्म से बचकर के, अकाल पुरुष और दयाल देश में पहुंच सकते हैं। यहाँ रहते हुए, जब तक आपको दयाल का अनुभव नहीं हुआ, जीवन्मुक्ति प्राप्ति नहीं हुई तो सद्-गुरु भी झूठा और आप भी झूठे। यहाँ सत्संग में बैठे हुए, सत्संग के अन्दर किसी न किसी दिन तुमको उसका दृश्य दिखाई दे जायेगा। मुझे यही आज्ञा है कि मैं आपके लोक और परलोक दोनों को बनाऊँ। अगर लोक नहीं बना तो परलोक कैसे बनेगा ? इसलिए जो संन्यासी है, जिसने गृहस्थ का दुःख नहीं देखा है, जो गरीब नहीं रहा है, वह तुम्हारी समस्याओं को क्या सुलझायेगा ? सद्‌गुरु वक्त वह होता है जो तुम्हारी हर समस्या को दूर करे। शरीर की समस्या को दूर करे, मन की समस्या को दूर करे, आत्मा की समस्या को दूर करे और सुरत की 'मैं' को हटाकर के, सुरत निरत को अरत बना करके, मालिक से साक्षात्कार करा दे। यदि वह ऐसा नहीं करा सकता तो वह कुछ और होगा लेकिन सद्‌गुरु वक्त नहीं होगा। सद्‌गुरु वक्त वह है जो आपकी सभी समस्याओं का समाधान करे। ऐसा नहीं कहे कि आप मेरे ही सत्संग में आओ और किसी के सत्संग में मत जाओ। यहाँ पर सद्‌गुरु सत्संग आकर दे। मैं सबको सत्संग दिलाने के लिए तैयार हूँ। मैं आपको बड़े दर्द दिल के साथ कह रहा हूँ। मैं खुद बड़ा हैरान हुँ कि जिनको मैं सच्चा सन्त समझता था और जो गुरु का काम कर रहे हैं, वह इतने स्वार्थी हैं कि अपने अहंकार में लोगों को धोखा दे रहे हैं। दाता दयाल जी महाराज, जिन्होंने सब धर्मों का निचोड़ निकाल कर यह कहा कि राधास्वामी मत सनातन धर्म की आखिरी कड़ी है, राधास्वामी मत किसी मत का खण्डन नहीं करता। मैं तो महाराज की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। मैं आपसे अपने

खर्चे के लिए पैसा नहीं चाहता। मेरी हजारों रुपए महीने की पैन्शन हर महीने आ रही है अमरीका से। मैं आपसे झूठ क्यों बोलूँगा ? मेरे प्रेम से कोई बच नहीं सकता। मैं जिनके बारे में बात कर रहा हूँ, उनसे भी मेरा प्रेम है। मैं प्रेम और सच्चाई आपके सामने रख रहा हूँ। महाराज ने अन्त में मुझ से कहा था "मानव ! तेरी भी परम अवस्था आयेगी लेकिन उससे पहले तुझे सत्संगियों की सेवा का महान् कार्य करना होगा"। परम दयाल जी महाराज आपको सद्गुरु मानते थे और मैं भी आपको सद्गुरु मानता हूँ। सद्गुरु आता है और तुम उसके आगे झुक करके, उसे सद्गुरु कह करके, उस के सद्भाव को पनपा देते हो, निखार देते हो। मैं तुम्हें निखारने के लिए आया हूँ। मेरे बिखरे हुए अंशो ! मेरे प्रियतम सत्संगियो ! यह बात आपको दर्दे दिल से कह रहा हूँ। इन शब्दों के साथ मैं आजका सत्संग समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

❋ शोक समाचार ❋

दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि श्री एम. एल. गुप्त सत्संगी, A–30, अमृतपुरी, ईस्ट आफ कैलाश, नई देहली, का स्वर्गवास दिनांक 28-9-87 को हो गया। मानवता मन्दिर परिवार दिवंगत आत्मा की शांति तथा शोकाकुल परिवार की सहन-शक्ति के लिए परमपिता राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करता है।

जनरल सेक्रेटरी

मासिक सन्देश

परम सन्त हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरे परम प्रिय सत्संगियो,

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको मुरादाबाद तक के दौरे की सूचना दी थी। उसी दौरान में 9 अक्टूबर 87 को बिलारी में प्रातःकाल मानवता मन्दिर में विशाल सत्संग हुआ। हमेशा की भाँति बिलारी के सत्संगियों ने बड़ी श्रद्धा से सत्संग सुना। इसके बाद हम दोपहर के भोजन के लिए श्रीमती लता सरीन के यहाँ राजा का सहसपुर में गये। इस अवसर पर बहन सावित्री भी हमारे साथ थीं। वहाँ पर हमें सहसपुर की रानी इन्दिरा मोहिनी जी, उनकी सुपुत्री राज कुमारी रीना तथा उनके दामाद भी मिले। मैं उनके बारे में आपको इसलिए सूचना दे रहा हूँ कि यह परिबार विशेष रूप से एक आदर्श मानव परिवार है और इनकी श्रद्धा भी अगाध है। राजकुमारी रीना बिलारी के क्षेत्र से उत्तर प्रदेश की विधान सभा की सदस्या चुनी गई हैं और उनका यह विश्वास है कि उनकी सफलता मेरे आशीर्वाद से हुई। रानी

इन्दिरा मोहिनी जी उत्तर प्रदेश की प्रादेशिक राज्य सभा की सदस्या (M.L.C.) हैं।

करीब 3 बजे हम देहली के लिए रवाना हो गये और 10 बजे रात्रि को राजपुर रोड पहुँच गये। 10 तारीख प्रातःकाल को देहली से रवाना होकर हम 6 बजे सायंकाल मानवता मन्दिर, होशियारपुर पहुँच गये। 28 अक्टूबर तक मैं होशियारपुर में रहा। इस दौरान में साप्ताहिक और मासिक सत्संग हमेशा की भाँति चलते रहे। मासिक सत्संग में दूर-२ से लोग आये और बटाला के सत्संगियों ने हर मास की भाँति सभी को प्रातःकाल नाश्ते की सेवा दी। 29 अक्टूबर को मुझे स्वामी रामतीर्थ प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित स्वामी राम-तीर्थ जी की 113वीं वर्षगाँठ पर सन्त सम्मेलन पर लखनऊ पहुँचना पड़ा। यहाँ पर श्री कृष्ण मोहन तिवारी जी के नये निवास पर भी दो सत्संग हुए। रामतीथ प्रतिष्ठान के तत्त्वावधान में मेरे तीन प्रवचन हुए। वहाँ पर श्रोताओं की संख्या तीन हजार के लगभग थी। हम तीन नवम्बर को लखनऊ से रेल द्वारा चलकर 4 नवम्बर को होशियारपुर पहुँच गये।

इस सम्बन्ध में मैं आपको यह बताना भूल गया कि हम लखनऊ जाते समय दो दिन देहली रुके थे, क्योंकि अमेरिका के आचार्य डा. रोडन हाइजर अमेरिका से देहली पहुंच गये थे। वह भी हमारे साथ लखनऊ चले। लखनऊ में 3 दिन रहने के बाद और एक दिन विश्राम करने के बाद हम पंजाब मेल द्वारा 4 नवम्बर प्रातःकाल जालन्धर पहुँच गये और उसी दिन दोपहर के 3 बजे तक होशियारपुर पहुँच गये। डा. रोडन हाइजर और आचार्य शब्दानन्द पहली नवम्बर को ही देहली के लिए रवाना हो गये थे। देहली में इंग्लैंड के डा. के.

एम. खुराना और उनकी आत्मजा लीना खुराना भी इंग्लैंड से पहुँच चुके थे। इसलिए डा. खराना, उनकी सुपुत्री, डा. रोडन हाइजर 5 नवम्बर तक होशियारपुर पहुँच गये। इन दिनों 18 नवम्बर 1987 को परम दयाल जी महाराज की 101वीं वर्षगाँठ के सम्बन्ध में मानवता मन्दिर में तैयारियाँ हो रही थीं। इस अवसर पर 7 नवम्बर से ही लोग दूर-२ से मानवता मन्दिर पहुँचने लगे। इससे पहले करीब-२ हर रोज सत्संग होता रहा और साप्ताहिक सत्संग में भी सत्संगी भारी संख्या में भाग लेते रहे।

18 नवम्बर का उत्सव धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर परम दयाल शताब्दी ग्रन्थ का विमोचन भी होना था। इस पुस्तक का विमोजन डा. के० के० शर्मा ने किया और पहली पुस्तक जनरल जयसिंह को भेंट की गई। दूसरी पुस्तक डा. विलियम रोडन हाइजर को दी गई। इसके अलावा लीना खुराना ने छोटी आयु में आध्यात्मिक कविताएँ लिखी हैं जो एक पुस्तिका के रूप में पहली बार छपी हैं। ये कविताएँ अंग्रेजी में लिखी गई हैं और इस पुस्तिका का नाम 'INNER VOICE' अर्थात् 'आन्तरिक शब्द' है। इस पुस्तिका का विमोचन जनरल जय सिंह जी ने किया और पहली पुस्तिका कुमारी लीना खुराना को प्रस्तुत की।

इसके बाद सत्संग आरम्भ हुआ जो लगभग दो घण्टे तक चला। इस सत्संग में मैंने परम दयाल जी महाराज के सद्गुरु वक्त होने के सम्बन्ध म और उनकी राधास्वामी मत को सच्चाई की विशेष देन के बारे में अपने अनुभव बाँटे। सत्संग के बाद परम दयाल जी महाराज की संगमरमर की भव्य मूर्ति का अनावरण किया गया। मैंने और डा. रोडन हाइजर ने एक साथ सत्संग भवन में रखे हुए सन्दूक का पर्दा

हटाया और सत्संगियों ने अति सुन्दर साक्षात् परम दयाल जी महाराज की आकृति का दर्शन किया और गद्‌गद् हो गये। वास्तव में, जयपुर के सबसे ऊँचे कलाकार श्री अत्रि ने संगमरमर में प्राण डाल दिये। परम दयाल जी महाराज चादर पहने हुए ऐसे बैठे हैं जैसे कि वह अभी सत्संग देने के लिए तैयार हो रहे हैं। कुछ दिनों के बाद मैंने जब इस मूर्ति के अनावरण का रंगदार फोटो देखा और मूर्ति के पास भाग्य माता जी को बैठे हुए देखा तो मैंने हैरान होकर कहा, "महाराज जी के पास इस प्रकार बैठकर आपने कब फोटो खिचवाया था ?" वास्तव में मुझे उस फोटो में परम दयाल जी महाराज की मूर्ति का आभास ही नहीं हुआ। मैं इस फोटो की कापियाँ बनवा रहा हूँ और इसके साथ - २ और भी इसी मूर्ति की फोटो की कापियाँ बनवाई जा रही हैं। कुछ समय में यह फोटो सत्संगियों को मिल सकेंगे।

जैसा कि मैंने पहले भी आपको सूचना दी है कि इस मूर्ति की स्थापना वैसाखी के अवसर पर की जायेगी क्योंकि समाधि पर छत का निर्माण होना है और उसे एक मन्दिर का आकार दिया जाना है।

हम 19 नवम्बर को प्रातःकाल होशियारपुर से रवाना हो कर सायंकाल 7 बजे तक फरीदाबाद पहुँच गये। डा. रोडन हाइजर और डा. खुराना तथा कुमारी लीना हमारे साथ थे। यहाँ पर मैं आपको यह बताना भूल गया कि 18 नवम्बर के सत्संग के दौरान में डा. रोडन हाइजर ने ग्रन्थ विमोचन के समय परम दयाल जी महाराज को श्रद्धान्जलि दी। उन्होंने कहा कि परम दयाल जी महाराज का शताब्दी स्मारक ग्रन्थ आने वाली पीढ़ियों के लिए युगों तक प्रेरणा का स्रोत रहेगा और करोड़ों व्यक्तियों का मार्ग-दर्शन करता रहेगा।

20 नवम्बर को हम दोपहर को लगभग 2 बजे देहली पहुँच गये। 21 नवम्बर को बहुत से सत्संगी राजपुर रोड पर मिलने के लिए आते रहे। सायंकाल 6बजे हम सलवान स्कूल पहुँचे। सायंकाल 7 बजे तक सैकड़ों सत्संगी दूर-२ से वहाँ पहुँच चुके थे। उनकी श्रद्धा और उनका प्रेम, उनके व्यवहार से टपक रहा था। दूसरे दिन प्रातःकाल हजारों सत्संगी परम दयाल जी महाराज की 101वीं वर्ष-गाँठ के उत्सव के सत्संग में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर आचार्य के. पी. वर्मा तथा आचार्य शब्दानन्द ने भी शताब्दी के महत्त्व पर अपने विचार प्रकट किये। श्रीमती राज सलवान ने परम दयाल शताब्दी स्मारक ग्रंथ का विमोचन किया और उन्होंने परम गुरु के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। मेरा सत्संग भी करीब दो घण्टे तक चला। सत्संगियों की भीड़ हमेशा की तरह बहुत ज्यादा थी। लोग सत्संग भवन के बाहर चारों तरफ खड़े होकर सत्संग सुनते रहे। डा. रोडन हाइजर ने भी परम दयाल जी महाराज को श्रद्धाञ्जलि दी। उन्होंनें वहाँ पर भी शताब्दी स्मारक ग्रंथ के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह ग्रंथ युगों तक परम दयाल जी महाराज द्वारा प्रज्वलित प्रकाश के माध्यम से अज्ञान के अन्धकार को दूर करता रहेगा।

23 नवम्बर को हम प्रातःकाल शाने पंजाब से जालन्धर पहुंचे और सायंकाल 4 बजे तक मानवता मन्दिर में पहुँच गये। इस बार मासिक सत्संग का आयोजन 29 नवम्बर को हुआ और हमेशा की भाँति इस अवसर पर सत्संगी दूर-२ से आये। उसी दिन हमें सत्संग के लिए आदमपुर जाना पड़ा। यह सत्संग श्री महेन्द्र सिंह जी के घर पर आयोजित हुआ। कुछ समय के लिए हम डा. परसराम जी के घर भी

गये। 30 नवम्बर को प्रातःकाल के दैनिक सत्संग के बाद हम 11 बजे श्री T. K. Sharma के साथ जालन्धर के लिए रवाना हो गये। श्री टी० के० शर्मा ने अपने निवासस्थान पर दोपहर के भोजन का और सत्संग का बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया और सारे कार्यक्रम की वीडियो फिल्म भी तैयार कराई। सत्संग पर सत्संगियों की काफी संख्या मौजूद थी। श्री टी० के० शर्मा का आग्रह है कि जालन्धर में कम से कम दो महीने में एक बार सत्संग अवश्य होना चाहिए।

3 दिसम्बर 87 को हम पंजाब मेल के द्वारा जालन्धर से लखनऊ के लिए रवाना हो गये क्योंकि गीता मन्दिर सीतापुर में श्रीमती विद्या विवेक ने 25 नवम्बर से 4 दिसम्बर तक गीता जयन्ती का समारोह आयोजित किया हुआ था और इस अवसर पर कई सन्तों और आचार्यों को निमन्त्रित किया हुआ था। समय के अभाव के कारण श्रीमती विद्या विवेक के विशेष आग्रह पर मैंने 4 दिसम्बर को सत्संग देने की अनुमति दी थी। हम 4 दिसम्बर को लगभग 12 बजे दोपहर को लखनऊ पहुँचे। श्री कृष्ण मोहन तिवारी और उनके साथी स्वागत के लिए स्टेशन पर मौजूद थे। हम थोड़े समय के लिए तिवारी जी के घर पर रुके जहाँ लखनऊ के सत्संगियों की भीड़ लग रही थी। हम कार द्वारा साढ़े तीन बजे गीता मन्दिर सीतापुर पहुँच गये। यहाँ पर सभी लोग हमारे पहुंचने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने सन्तमत की दृष्टि से भगवद्गीता की व्याख्या की जो सभी उपस्थित साधुओं और सन्तों तथा सत्संगियों को बहुत अच्छी लगी। आचार्य कृष्ण मोहन श्रीवास्तव भी इस अवसर पर मिश्रिक तीर्थ के सत्संगियों सहित पहुँच गये थे। सत्संग के बाद हमने आचार्य कृष्ण मोहन जी के सुपुत्र के घर पर भोजन किया और रात को साढ़े नौ बजे तक श्री कृष्ण मोहन

तिवारी जी के घर पर लखनऊ पहुँच गये। यहाँ पर बहुत से सत्संगी हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। छोटे से सत्संग के बाद हमने रात्रि का विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल शेव का सत्संग हुआ और करीबन साढ़े छः बजे लखनऊ हवाई अड्डे के लिए रवाना हो गये। साढ़े आठ बजे प्रातःकाल इण्डियन एयरलाइन्स की पहली उड़ान के द्वारा लखनऊ से रवाना होकर मैं करीब साढ़े नौ बजे देहली हवाई अड्डे पर पहुँच गया। यहाँ पर आचार्य के० पी० वर्मा और उनका परिवार, हरिवंश तथा भाग्यमाला जी हवाई अड्डे पर मौजूद थे। सौभाग्यवश देहली के हवाई अड्डे पर अमेरिका के विख्यात स्वामी राम से भेंट हुई। वह मुझे और भाग्य को मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। स्वामी राम अमेरिका में भारतीय संस्कृति और रूहानियत को सही रूप में फैलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य रहे हैं। इनके बारे में और सत्संग के दौरे के बारे में शेष सूचना अगले मासिक सन्देश में दी जायेगी।

तपः के सम्बन्ध में पिछले से पिछले मासिक सन्देश में हमने दाता दयाल जी महाराज के उस शब्द की व्याख्या की थी जिसमें उन्होंने भक्ति की मस्ती के बारे में अपने अनुभव बताये हैं। तपस्या का आखिरी सोपान भगवद्गीता में भी यही समाधि की अन्तिम अवस्था है, जिसे आन्तरिक अभ्यास से पाया जाता है। उपनिषदों में तपस्या के इसी सोपान को निदिध्यासन कहा गया है। इसी सोपान को सन्तमत में—राधास्वामी मत में सतनाम कहा जाता है।

वैसे तो सतनाम का असली मतलब राधास्वामी अवस्था को पाना है किन्तु यहाँ पर निदिध्यासन की दृष्टि से इसी अवस्था को पाने की विधि को ही सतनाम कहा जायेगा। इस विधि अर्थात् योग के अभ्यास से सत्संगी अलग - २ अवस्थाओं से गुजरता हुआ अन्त में शब्द से

भी परे उस अशब्द गति को पा जाता है जो सत्, चित्, आनन्द से परे है और जिसको पाने के लिए हर प्रकार का प्रयास समाप्त हो जाता है और मनुष्य जीते जी परमशान्ति को प्राप्त कर लेता है। हर एक व्यक्ति यदि चाहे तो इस अवस्था को एक ही जीवन में पा सकता है। यह तभी सम्भव होता है जब सत्संगी को अपने अनुभव से यह ज्ञान हो जाये कि इस संसार में सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, निंदा-स्तुति और सर्दी-गर्मी के अनुभवों से कोई भी व्यक्ति जीवन काल में बच नहीं सकता। किन्तु अभ्यास एवं निदिध्यासन में लग जाने से मन में सन्तुलन आ जाता है और व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति की ओर बढ़ता है। सद्गुरु के सत्संग से जब यह ज्ञान हो जाता है कि द्वन्द्वात्मक अनुभव सापेक्ष और स्थायी है जबकि उनके अनुभव करने वाला विशुद्ध आत्मा परमतत्त्व का अंश होने के कारण अविनाशी और स्थायी हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया है :—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

अर्थात् सर्दी - गर्मी, दुःख-सुख स्थायी हैं, आने - जाने वाले हैं। हे अर्जुन ! तू इन्हें सहन कर। इसी तितिक्षा एवं तपस्या के फलस्वरूप ही मनुष्य अमृतत्व का अधिकारी होता है। इसलिए अर्जुन को तितिक्षा का महत्त्व बताते हुए कहा है :—

जिसको यह व्यथित नहीं करते,
सुख - दुःख में सम धैर्यवान को ॥
हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! वही नर,
अवश्य पाता अमर स्थान को ॥

इस प्रकार वाणी की तपस्या वास्तव में सन्तमत के सुमिरन, ध्यान और भजन का ही विस्तार है। वाणी की अन्तिम अवस्था एवं मन की अन्तिम अवस्था राधास्वामी अवस्था ही है।

इन शब्दों के साथ मैं आपको इस मास की सद्‌भावना देता हूँ और चाहता हूँ कि आप सहनशील बनें और इस प्रकार अधिकारी सत्संगी बनें।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय

मानव।

मेरे सद्गुरु मेरे आराध्य

मेरे पढ़नेवालो, मेरे आराध्य सद्गुरु के प्यारे सत्संगियों आप सबको नये वर्ष की शुभ कामनाओं के साथ आज मैं आप को बताना चाहता हूं कि मैं इन लेखों में क्या और क्यों लिखता हूं। मैं जो कुछ लिखता हूं किसी भौतिक लाभ या दुनियावा स्वार्थवश या किसी को खुश करने की गरज से नहीं लिखता बल्कि दिल के दिल से लिखता हूं, पूर्ण निष्ठा-आत्म-विश्वास से लिखता हूं और अपनी ज़मीर को टटोल कर सौ फीसदी सच्चाई से लिखता हूं। किसी अपस्वार्थ की भावना से नहीं, बल्कि अपने आराध्य सद्गुरु देव के परम निःस्वार्थ, बेगरज, अहेतुकी, सच्चे रूहानी प्रेम के सुनहरे धागे में जकड़ा उनके अविस्मरणीय अलौकिक अहसानों से दबा, गुरु ऋण के मादक बन्धन में बँधा हुआ, उनके अमल-विमल प्यार का ज़र-खरीद गुलाम होने के नाते, घर छोड़कर हजारों मील दूर पंजाब के अशान्त वातावरण में आन कर उनके निर्मल-पवित्र खून-पसीने से निर्मित मानवता मन्दिर और उनके कमल-चरणों की सेवा में रहने को विवश और मजबूर हूं। इस मजबूरी में भी एक खास किस्म की परमार्थिक लज्जत और खुशी है जो बचपन, जवानी और गृहस्थी की खुशियों से कहीं बढ़कर आनन्दप्रद है।

सत्तनाम के पटतरे देवे को कुछ नाहिं।
क्या ले गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहि॥
जन कबीर बंदन करै, केहि विधि कीजै सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरुदेव॥

सद्गुरु की शान में जो कुछ भी लिखा जाए वह थोड़ा है।

सात समुन्द्र की मसिकरी, लेखनि सब बन राय।
धरती की कागद करी, गुरु गुन लिखा न जाय ॥

दाता दयाल जी ने अपने सद्गुरु की शान और उनसे प्राप्त सत्ज्ञान के प्रकाशन में पाँच हजार पुस्तकें लिख डालीं फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तो परम दयाल जी महाराज को नये सिरे से अध्यात्म की तालीम देने की आज्ञा दी। परम दयाल जी महाराज ने दाता दयाल जी महाराज द्वारा प्रवाहित ज्ञान के क्षीर-सागर का मंथन कर उसका माखन निकाल कर सत्संगियों को पेश किया और हज़ूर मानव दयाल जी महाराज उस माखन में अपने अलौकिक दिव्य प्रेम की मिश्री घोलकर नित नूतन व्यंजन, अपने अनवरत सत्संगों द्वारा, सत्संगियों को पानकराते रहते हैं।

गुरु-ज्ञानदान का यह अटूट सिलसिला अनादिकाल से चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। समझने की बात केवल यह हैं कि एक अविनाशी परमतत्त्व सर्वाधार मालिक ही सन्त सद्गुरु वक्त के शक्ल में रूप बदल - २ कर समय और परिस्थितियों के अनुसार नवीन शैली में एक ही सनातन सत्य का उपदेश अपने सत्संग प्रवचनों द्वारा जिज्ञासुओं को देते रहते हैं जिसे ग्रहण कर जिज्ञासुजन निजधाम को पहुंच जाते हैं।

सद्गुरु न पैदा होते हैं, न मरते हैं। वे अवतार लेकर प्रकट होते हैं और जीवों का सच्चा कल्याण करते हैं। अवतार को अवतार ही पहचानते है और जिस प्रकार एक प्रज्वलित दीपक दूसरे दीपक को प्रज्वलित कर देता है, एक अवतार दूसरे अवतार के सद्गुरुपने को जगा कर अपना संदेश इशारे इशारे में दे जाते हैं।

शक्ल पर और नाम पर जाते हो क्यों तुम बार बार।
जब उन्हें देखो तसव्वर कर लो जाते पाक का॥

रूप और नाम का अन्तर भले ही हो, परन्तु सद्गुरु की जाते-पाक में कोई अन्तर नहीं होता। परमतत्त्व मालिके-कुल और सदगुरु तत्वत: एक और अभेद हैं। कबीर साहब फरमाते हैं :—

गुरु गोविन्द तो एक हैं, दूजा है आकार।
आपा मेट जीवित मरे, तब पावे करतार॥

जो अपने अहं को त्याग कर मालिकेकुल और सद्गुरु के एकत्व और अभेद को समझता है वही मालिक को पाता है।

राधास्वामी सदगुरु आए, भेद दिया पूरा पूरा।
जो कोई भेदभाव को मेटे, सद्गुरु का सेवक सूरा॥
गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु:, गुरुर्देव महेश्वर:।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नम:॥

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के रूप में दाता दयाल जी महाराज नें पाँच हजार पुस्तकें लिखकर तत्त्व-ज्ञान का क्षीर-सागर उमड़ाया, पालनकर्ता विष्णु रूप में परम दयाल जी महाराज ने क्षीर-सागर का मन्थन कर, उसका सारतत्त्व निकाल कर माखन के रूप में सत्संगियों के लिए सुलभ बनाया और कल्याणकर्त्ता शंकर के रूप हजूर मानव दयाल जी महाराज उसी सारतत्त्व माखन को अपने निर्मल प्रेम की माधुरी में पगे नित्यनूतन, सुमधुर-सुस्वादु व्यंजन के रूप में अपनें सत्संगों के जरिये हम सत्संगियों को सदा पान कराते रहते हैं। तत्वत: इन के रूपों में कोई भेद नहीं है।

माया ब्रह्म का भेद है न्यारा, भेदवाद है भरम कथा।
जो कोई उनका रूप पिछाने, भेदवाद है धरम कथा॥

सच तो यह है कि मुअल्ला मुकद्दस हज़ूर मानव दयाल जी महाराज के रूप में स्वयं हज़ूर परम दयाल जी महाराज और दाता दयाल जी महाराज विद्यामान हैं और हम सत्संगियों का सच्चा कल्याण कर रहे हैं।

गुरु देव जगद्व्याप्तं, ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्।
गुरु परवरं नहिं किंचित्, नस्मै श्री गुरवे नमः॥

दासों में लघुतम
शब्द

परमसन्त हिज होलीनेस हज़ूर मानव दयाल
डा. ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का वसन्त सत्संग
जनवरी, फरवरी 1988 का दौरे का प्रोग्राम

17 जनवरी 1988 — 3 बजे सायंकाल शाने-पंजाब द्वारा जालन्धर से दिल्ली के लिए प्रस्थान। 9.30 बजे रात दिल्ली पहुंच व विश्राम। के. पी. वर्मा, 16-A, EAC Flat, 16-ए, राजपुर रोड, दिल्ली Ph. 2912513

18 जनवरी 1988 — 12.30 बजे नई दिल्ली रेलवे स्टेशन को प्रस्थान, 2 बजे मध्याह्न ए. पी. एक्सप्रैस द्वारा सिकन्दराबाद आंध्र प्रदेश को रवानगी।

19 जनवरी 1988 — 3.50 दोपहर सिकन्दराबाद पहुँच।

19 जनवरी से 22 जन. दोपहर तक — हैदराबाद (चिन्तल बस्ती आदि) में सत्संग
पता : 1) Be Man Temple,
AOC Gate, Sicundrabad (A.P.)
2) Sh. Roop Chander,
Nar Singh Vyas, 15-8-45,
Feelkhana, Ganesh Nagar,
Hyderabad. ☎ 557235, 44143

22 जनवरी 1988 — 2 बजे दोपहर हनमकुण्डा को प्रस्थान

24 जनवरी 1988 — हनमकुण्डा में सत्संग व निवास
पता Be Man Temple, Hanamkunda

25 जनवरी 1988 — प्रातः 5 बजे हैदराबाद को प्रस्थान।

27 जनवरी 1988 — प्रातः 7 बजे A P Express से बलार श
को प्रस्थान। 12.42 दोपहर
बलार शा पहुँच।

28, 29 जनवरी 88—अहेरी में निवास व सत्संग।
पता-Inter-national Society, Aheri

30 जनवरी 1988 — प्रातः चन्द्रपुर को प्रस्थान, सायं 4 बजे
सत्संग व विश्राम। रात्रि 9.27 या
1.27 बजे कर्नाटक एक्सप्रेस से
नागपुर पस्थान।

1 फरवरी 1988 —सायंकाल 6.42 बजे नागपुर से 125 केरल
एक्सप्रेस से नई दिल्ली के लिए प्रस्थान

2 फरवरी 1988 — प्रातः 11.08 बजे दिल्ली पहुँच व विश्राम
EAC, Flat-2, 16-A, Rajpur Road
Delhi.

3 फरवरी 1988 — प्रातः 7 बजे दिल्ली से होशियारपुर
को प्रस्थान।
सायं 5 बजे होशियारपुर पहुँच।

नोट :—उपर्युक्त प्रोग्राम में सम्भावित परिवर्तन की सूचना आगामी माह के मानव मन्दिर में दे दी जायेगी ।

एस० एल० सेठी
जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर, होशियारपुर

विश्व समाचार समीक्षा १९८७

1987 वर्ष के दौरान में भी पिछले वर्ष की भाँति विश्व में सर्वत्र दु:खद घटनाओं, हत्याओं और साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़ों की सूचनाओं की प्रधानता रही। धर्म के नाम पर विश्व-भर में अत्याचार और जनसंहार हो रहा है। कहीं पर प्रोटैस्टैंन्ट ईसाईयों का कैथोलिक ईसाइयों से टकराव है तो कहीं ईसाइयों का मुसलमानों से झगड़ा है। मुसलमान राज्यों में भी ईरान और इराक कई वर्षों से भयानक युद्ध में ग्रस्त हैं क्योंकि ईरान शिया मुसलमान है और ईराक सुन्नी मुस्लिम सम्प्रदाय का अनुयायी है। इसी प्रकार श्रीलंका के छोटे से देश में भाषा और धर्म के नाम पर मारकाट हो रही है।

यह सब घटनाय तब तक घटित होती रहेंगी जब तक मनुष्य अपने आप को नहीं पहचानता और जब तक वह ईश्वर के स्वरूप को व्यापक न जानकर उसे विशेष सम्प्रदाय विशेष धर्म या विशेष जाति का समर्थक मानता है।

वास्तव में ईश्वर, परमात्मा, अल्लाह, GOD, ख़ुदा, मालिकेकुल, राम, परब्रह्म, राधास्वामी आदि उसी एक शक्ति आधार के नाम हैं जो अपने आप में पूर्ण हैं। मनुष्य उसी सर्वाधार का साक्षात् स्वरूप है। हरएक धर्म में इसी सच्चाई को बताने की कोशिश की गई है।

भारत में आदि धर्म सनातन धर्म एवं आर्ष धर्म में ऋषियों ने अनुभव के आधार पर यह साबित कर दिया है कि मनष्य

स्वयं मालिकेकुल का सच्चा स्वरूप है। इसलिए वेदों में लिखा है कि मनुष्य अमृत का पुत्र है। उपनिषद् कहते हैं कि मनुष्य स्वयं ही वही परमतत्त्व है जिसको वह भूल से अपने बाहर ढूंढ़ रहा है। केवल इतना ही नहीं बल्कि ऋषियों ने अनुभव के बाद यह साबित कर दिया है कि इस जगत में जो कुछ जड़ या चेतन अस्तित्त्व रखता है, वह ईश्वर से ओतप्रोत है। इन्हीं अनुभवों के आधार पर वेद मुक्तकण्ठ से उद्घोष कर रहा है।

"उदारचरितानांतु वसुधैवकुटुम्बकम्"।

अर्थात् उदार चरित्र वाले मनुष्य के लिए सारा जगत् एक परिवार है।

इसी मानव परिवार की धारणा को सिद्धान्त रूप से सभी धर्म मानते हैं। नहि केवल पूर्वी धर्म, जिनका सम्बन्ध भारतीय संस्कृति से है, इस सच्चाई का उद्घोष करते हैं बल्कि तथाकथित पश्चिमी धर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म और इस्लाम भी एक ही मालिक को केवल मानव जाति का ही नहीं बल्कि ब्रह्माण्ड का कर्त्ता और पिता मानते हैं। विडम्बना तो यह है कि ईश्वर को पिता और मानवमात्र को उसकी सन्तान मानते हुए भी इन धर्मो के अनुयायी धर्म के नाम पर मानव का संहार कर रहे हैं।

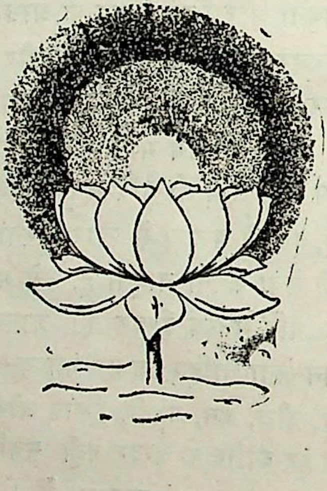
इसका मूल कारण यह है कि धर्म को जीवन पर लागू न करके बल्कि उसके आधारभूत नियमों के विरूद्ध चलकर आज मानवजाति खण्ड - २ हो रही है। 'मानव मन्दिर' में जितने लेख छपते हैं, वे बिना किसी धर्म, जाति, राष्ट्रीयता लिंग के भेदभाव के इसी सच्चाई पर प्रकाश डालते हैं।

पहचान ले अपने को तो इन्सान ख़ुदा है।
जाहिर में गो है ख़ाक मगर ख़ाक नहीं है।।
जलवों की ख़ता क्या जो दिखाई नहीं देते।
ख़ुद देखने वालों की नज़र पाक़ नहीं है ।।

दूसरे शब्दों में मनुष्य अपने आप में और दूसरों में मौजूद ईश्वर की झलक को इसलिए नहीं देख पाता क्योंकि वह दूसरों को दूषित निगाह से देखता है। यदि वह हरएक मनुष्य से सद्भावना और शिवसंकल्प के आधार पर व्यवहार करे तो उसकी नजर पवित्र हो सकती है और वह हरएक से वैसा ही प्यार कर सकता है जैसे वह अपने आप से करता है। जब हरएक धर्म ईश्वर को प्रेम मानता है और हर मनुष्य को ईश्वर का स्वरूप मानता है तो यदि मनुष्य ईश्वर से प्यार करना चाहता है, तो उसे मनुष्य से प्यार करना चाहिए। यदि मनुष्य ईश्बर की सेवा करना चाहता है, उसे मनुष्य की सेवा करनी चाहिए। यदि मनुष्य ईश्वर को जानना चाहता है तो उसे यह जान लेना चाहिए कि हर मनुष्य के अन्दर हिन्दु मुस्लिम, सिक्ख, बौद्ध, जैन, यहूदी, ईसाई और पारसी धर्म पर चलने वाले हर व्यक्ति के अन्दर वही सर्वाधार मालिक मौजूद है जिसकी हम सब सन्तान हैं। यही सच्ची मानवता है। यही सच्चा धर्म है। इस धर्म पर चलने वाले के लिए यह जरूरी नहीं कि वह अपने धर्म या अपने सम्प्रदाय को छोड़कर किसी दूसरे धर्म को अपनाये। हरएक धर्म का अनुयायी अपने धर्म के मूलभूत नियमों पर चलता हुआ, अपने ही धर्म में प्रतिपादित प्रेम का अनुसरण करता हुआ

इस मानवता पर चल सकता है। इसीलिए 'मानव मन्दिर' पत्रिका लगातार इस सच्चाई का समर्थन कर रहा है कि सभी धर्म परस्पर सहयोग करते हुए विश्व में शान्ति भ्रातृभाव और शिवसंकल्प को पनपा सकते हैं।

सम्पादक



ENGLISH SECTION

Of

Manav Mandir

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

JAN 10th, 1988.

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur, (Pb.) India;

Light on the Annad-Yoga

by

Data Dayal Maharshi
Shivbrat Lal Ji Varman

M A., LL.D.

GLIMPSE—IV

Description of the Three Entities.

As the single Entity finds expression in three aspects, so the three Phases of the One Great Idea could be described in form of three zones, as given below :—

सत्  अ

1. Sat — 1. A

रज  उ

2. Raj — 2. U

तम — म

3. Tam — 3. M

SACHIDANAND — सच्चिदानन्द

"AUM is another expression of the same significance Tri-une and therefore, it is the name of Deity presiding over and controlling the Economy of Creation of the three regions generated.

In 'A' there is the polarisarion of Energy; where Force, Vigour, or anything you mean to call it, is in its intensive degree; while in 'M' it is of the meagrest form. In 'U' the combining link of 'A' and 'M' there is both the intensity and the meagreness, as it borrows from both the spheres, that of Energy and that of Inertness.

The joining link partakes of the properties of both. This is why it is in the condition of agitation or co-agitation. In the first sphere or in its reflexive image. (i.e. the third sphere) there is no activity. All activity comes from the intermediate link and it is this principle that has given birth to all the 'pairs of opposites' observable or unobservable, thinkable or unthinkable, imaginable or unimaginable, in the Universe.

What ever is said, is said from relative point of view, and therefore it is necessary that the practicer practicing on these lines, should be careful to keep keep his mind concentrated on the point of 'relativity'.

The first sphere is of Positivity for there is Positivity in it. The second or its reciprocal is of Negativity, for there is the negation of the Positive-

principle. Positivity and Negativity are two terms "opposed" to each other, just as, you and your reflected image in the mirror are literally facing and confronting each other. But it is not 'yourself' that the reflected image of the mirror represents, although it resembles you. In the same way the Positive region naturally casts its reflection in the Negative region though in reality, this is the negation of the Essence in it. This region is bereft of it, but apparently it appears to possess every thing that is there, or that can be dreams of there, in the former. As between you and your reflected image in the mirror there is a space, so in the Universe also between Positive and Negative spheres there is a space and that 'space' in a way, represents the hemispherically globular from of both.

Positivity is Life, Negativity is Death, and the hemispherical combination of the joinining link necessarily combines in it the properties of both the principles of Life and Death in it.

Light is opposed to Darkness. Life is opposed to death. Love is opposed to hatred. The term opposition implies negation. Darkness, in reality, is absence of Light, Death in reality means in-existence Life. Pain actually means want of Bliss. In absence there is no existence.

In the terms of the prevailing religious systems, God is nothing but Positivity—Life, Light, and Love, Is it not Light all combined in it in their intensest.

form while, its opposite, Satan, nothing but the entire absence of Divinity, complete negation of Positivity and perfect annihilation of Reality ?

Those who believe in the existence of Satan, are quite in the dark. They are not only groping in the dark, but they are in the midest of darkness itself, surrounded by their whims and caprices, for Satan has no existence of what-so-ever kind. To believe in the non-existence or absence of anything is foolishness. Satan means 'which is not' and one who believes in 'which is not', which is nothing but nonentity itself, makes a great mistake.

There is no Satan, there is no sin, there is no death and no pain. For all these terms ignore the existence of the Essence in them. Those who ignore the reality indirectly or directly, are given to Ignorance and this Ignorance like other seeds, breeds its own progeny, spreading its influence all around, enveloping those who come under its clutches of darkness.

Sin is absence of Virtue. Death is absence of Life. Darkness is absence of Light. And Pain is abpence of Happiness. Why do you believe in 'absence' and why not in the 'presence' itself. Presence is to be believed in, relied on, and pondered over.

The Liberation

By

His Holiness

Param Sant Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj

CHAPTER III

Liberated alive is liberated alone,

No liberation till life exists

Till then pains, pleasures felt"

A man who considers his "self" all-in-all, he enjoys happiness and remains self - centered, but he is not liberated, because he is bound by his joys, he is confined to the centre of his "self". A man who has not achieved liberation in life or who has not become centre-free or free from the bondages of pleasures and pains, how can he attain liberation after death? The existence of Egoism is the greatest bondage. This egoism may be physical as I am father, mother, son, king, guru and disciple—etc. are all bandages. This egoism may be subtle as I am Sound, Light, Brahma, Truth, un-named, unseen and profound. These too are bondages, though

they are a source of joy. As the worldly people are not capable of understanding the highest stage of spirtuality, the ancient sages propounded different religious philosophies so that mankind may live a life of hopefulness, peace and happiness So I do not denounce those who propound that Sat Guru would come to accompany the disciple at the time of death. Such a positive thought is a great source of encouragement to an individual. 'I am Brahma' is also a great source of positive and helping thought. I am a disciple or devotee is too a great helpful thought. All these religions and philosophies are not bondage-free, but the difference is that their bondage is a soure of joy. These religions, sects and philosophies cannot liberate you. The roots of the cycle of transmigration remain alive as long as egoism exists. That is why I proclaim, that I have come down from the un-named Abode (Anami Dham). It is only this un-named stage where egoism vanishes and individual attains Jeevan Mukti.

"Surat becomes Blissful, after all extremes,

Purash Anami (un-named) reaches sky supreme."

Now this stage where egoism vanishes, the Abode of the Lord, is not realised by any saint, not even by Kabira, Swami Ji and other great Mahatmas. Because by reaching that state, they themselves lost their own entity, they named it as un-named and un-seen state. Whether that supreme state is realty un-named, no body has any positive proof it. I know that I am revealing to you the highest state, which is beyond your understanding. I am forced to perform my duty. My experience, truthful speaking and my observations have helped me to attain liberation in life.

No Liberation in physical body,
No liberation after death.
Liberated not in holy places dweller,
Liberation there is not kept".

I add my experience to the experiences of Sant Kabira :-

Liberated not the practiser of sound,
What deed to follow and what to propound.

He whose "self" is attuned to the internal sound and who enjoys its Bliss, how would he detach himself or liberate himself from the bondage of sound and its joy ? Similarly the man who is a practiser of light and enjoys its Bliss, is in the bondage of Light. This is a different thing that we do not consider Light and Sound as the causes of bondage. But the truth remains that all pleasure giving objects are the cause of bondage. The difference is only of degree as between the golden and iron chains. The chains remain the chains:

Gallows of doubt not cut in life,
Hoping liberation after death,
Thirsty man as in life,
Wanders thirsty in the dream.

All the internal stages of Sahas-Dal-Kamal, Trikuti, Sunna, Maha-Sunna, Bhanver Gupha, Sat and Alakh are nothing in reality, but the impressions of the external world imprinted upon your mind. Whatever is visible within is a reflection of some real object or impression of the external world as already explained above.

Our physical body is constituted of the particles and atoms of nature. The Divine element that dwells in this body is in the form of reflection of the Supreme Reality. If this truth is understood then all cravings even for practice (Sadhana) also vanish. Light and Sound within are also the reflections of external Light and Sound.As already referred to above, a stage comes, when you develop dis-passion for Light and Sound and even your practice (Sadhana) also comes to an end. But mind this stage can only be achieved after attaining Experience, Knowledge, (Gyan) and (Guru).

"What to practise when Guru is graceful" (found). A man who has found a real and graceful Guru need not undergo the hardship of Sadhana. The aim is to understand and experience the truth. Guru leads the aspirant through practical life. But mind this state is not within an easy reach. I myself had to spend my whole life to achieve this knowledge. It is after having personal experience that one can understand the words of Satsang.

'Gallows of doubt not cut in life,
Hoping liberation after death.
Thirsty man as in life,
Wanders thirsty in the dream.'

Is it not a fact that when you feel thirsty in your dream you search for water to quench your thirst ? Does there exist any source of water in your dream ? No. But still you quench your thirst. Similarly you create a woman in your dream and enjoy sex with her. Does it mean that a woman actually appears to you ? No, this creation of water or woman in your dream is

not a reality but reflections or impressions that are imprinted upon your mind. The Sahasdal-kamal, Trikuti, Sunna, Mahasunna and Bhamwar Gupha too are in fact Imprints. If you once understand this reality your doubts would vanish and you need not feel attracted towards these centres. One can have the understanding of this reality only after following this path.

"Have the glimpse (Darshan) listen to his words,
Having listened churn in mind,
Having churned get the essence,
Having the essence digest it,
Having digested, be perfect.
Dispelling, world illusion and fear.
But who follows this path ?
"All come in presence of sat Guru.
Enjoy not his glimpse nor catch his words."

When I use such works so emphatically I do question myself. Are you misleading the world ? Thousands of Satsangis have died performing austere practices. I have made every thing clear and easy for those who aspire for it. A Satsang of an hours is better than meditation of hundreds of years. If you succeed to understand this point you would not worry about your failures in meditational practice.

"Guru is knowledge, Sermonisation of Spirit. Sant Kabir writes :

"The detached is bondage free,
Live there where keeps He."

Sant Kabir advises us to achieve the state of detachment. The State of detachment is invincible by illusion. Firstly since I realised that it is not I who manifests to do your work, I was convinced that vision and manifestation of Data Dayal were not a reality but an illusion. It made me to detach myself from the visions. Secondly, this wrong notion that I am Brahm or I am all was dispelled by the lives of Swami Ji, Data Dayal Ji, Sahib Ji, Moullana Rumi and Shamstabrez. Satsangis and those Mahatmas proved to be my true Satgurus. I have no selfish motives. I have no desire for name and fame, I explain this truth simply to awaken mankind. Whether what I say is right or wrong, is not known to me. I have done my duty as I had pledged. Data Dayal Ji had said.

"Till Ye see with thy own eyes,
Accept not what I say."

So whatever I say is my own experience. I am convinced that I am a bubble of conciousness created by a motion in the Supreme Consciousness. I was unnamed, invisible and merged in Him as butter or Ghee is mingled in the milk. Radhaswami Dayal writes :-

"Listen O Surat ! from me thy Secret,
Thou wert merged in me since ever."

Before assuming this physical frame I was mingled in Him like butter or Ghee in milk. Butter is separated from milk after boiling it and churning is. Similarly, with a motion in that supreme power I, you and all others became separate from Him. 'This knowledge has dissolved my ego and has helped me to attain the state of detachment.

"The detached is bondage-free,
Live there where keeps He.
Without detachment bondage remains,
Going anywhere one is not free."

Now I have intuitioned who I am. I am a part and parcel of that Supreme Power, as butter is of milk. What worries should I have ? Till life exists :

"Yatra Yatra, Mano gachhati,
Tatra Tatra Samadhaya."

The entire creation is the game of His will. Life, death, vice, virtue, good, evil, dharam, deeds, creation and destruction are not in my hands. This all happens under His Will. By achieving this stage man lives the life of a child. This is what is meant by "Live there where He keeps you.". Live at His Will. Attainment of this stage is "Jeevan Mukta stage".

You have rendered many services to me, so I want to do my duty towards you. Understand only one point :

"Yatra Yatra mano gachhati,
Tatra Tatra Samadhya."

Live this life like a child. Remain at His will. Let His will always prevail. Till I realized this truth, I remained in one or the other bondage such as the bondage of Guru, bondage of devotion, bondage of light, bondage of sound and bondage of the third stage. Now all bondages have been broken. Whatever is to happen will happen. Attainment of this stage, I understand, is Jiwan Mukti.

"Get freedom from reincarnation,

By contemplating Immortal Name."

Now, what immortal Name is to be contemplated? Is it repetition of some particular name as 'Radhaswami' with your tongue? No. the true sumiran is to attain experience or direct knowledge of the Truth i.e. the light and sound manifested by a motion in that Supreme Element, which further carry on the process of creation and destruction. To keep this truth in mind is real sumiran of the Immortal Name. You may follow the path in-ward and listen to the sound, you would not achieve Jiwan Mukti. You may get joy, happiness, stage of ecstasy and attain will power, but not liberation in life, till you have this conviction, that his Will is supreme and is all pervading.

"Sayeth Kabira that he alone is Guru who cuts the noose of doubts."

Guru is he who dispels all doubts and whims. He convinces us that His will is supreme. Whatever

happened was His will, whatever is happening is His will and His will shall prevail in the future. A ttainment of this stage, in my view, is liberation-in-life. To those who come to me for satsang, I say that whatever I say is not my final verdict. I do not appeal that the world should follow me, But I do say that the propounders of different religious philosophies, instead of liberating the human beings, intangle them within their own circles and divide humanity on the basis of defferent names. Having compassion for my brethren, I have explained the truth. May you live a life of peace ! Live at His will and attain liberation in life. This is what I ever wish.

Peace to all.

Technique of God-Consciousness in Hindu Tradition with Parallels in Christianity

By

His Holiness

Hazur Manav Dayal Ji Maharaj

Dr. I. C. Sharma

Ours is the age of science and technology. Applied knowledge is playing an important role in our day to-day life. This very applied knowledge is termed technology. Technique is the method of applying theoretical knowledge to practical experience. Technology has been of immense practical value in the material advancement of man, whieh is the result of the research in all sciences whether physical, biological or social. The material comforts and the eradication of many contageous diseases are some of the blessings of science and technology. The contention of this paper is that the technique of god-conciousness, as the applied knowledge of man's relation to God, has and will continue to bring about the spiritual well being in the same

manner, as the scientific awareness of his relation to nature has resulted in his material well being.

Before giving a detailed discussion of the technique of God consciousness in Hindu tradition with some parallels in Christianity, it seems important to clarify that the knowledge or awareness in the material as well as the spiritual domain of man's environment has evolved gradually and progressively from ancient to the modern times.

The import of this statement is that the nature of matter and of God has always remained the same, whereas man's awareness of both these aspects of the Ultimate Reality has undergone change for the better. For example, electricity existed all over the earth even fifty thousand years ago. But our knowledge about the nature of electricity improved gradually, resulting in the untold benefits that the modern man enjoys from electronics. In spite of the existence of electrical energy in the hoary past, the cave man could not benefit, because his awareness of the nature of this energy was not so much advanced as it is today. Just as the awareness of the technique of benefitting from matter has come to the present level gradually, similarly the technique of spiritual discipline and practices, advocated by various religious traditions of the past and present has progressively evolved to the highest level of God-conciousness. This gradual improvement of the tech-

nique in science as well as in religion does not indicate any lack in the nature of matter or God. It only points to the evolutional nature of their knowledge on the part of man.

God, as the Supreme Being, has ever been, is, and will be the same. Bur our awareness of His Supreme Nature has been undergoing transformation. I feel that contemporary age calls for a comparative study of the technique of God-consciousness, applied in all the major religions of the world, so as to arrive at the true nature of man's relationship with God. The relationship of man with the Divine is unique practically experiencible and useful in pointing out that there is an underlying unity behind the apparent diversity among various religious traditions. This venture, therefore, might be worthwhile for consideration in the Assembly of the World's Religions.

The concept of God in the Hindu tradition from the Vedic period to the present day, has always emphasized that God is both immanent as well as transcendent. His immanent aspect, is constituted by the therefold functions of creation, sustenance and reabsorption of the material energy back into pure spirit. The symbolic expression of these three functions of God has been designated as Brahma, the creative self, Vishnu, the sustaining self and Shiva, the destroying self. This personification of the threefold expression of God also corresponds to the

Christian notion of God as the Father, the Son and the Holy Spirit. The unitive factor behind these three aspects has been designated as Brahman in the Vedas and the Upanishads.

It should be remembered that God, as omnipotent (Brahma), omniscient (Vishnu) and omnipresent (Shiva) is personal in the cosmic sense, because these three aspects of the physical, mental and spiritual bodies or selves belong to the Supreme Being, who is the transcendental self.

This description of God in the Hindu tradition is the result of the intuitive experience of the sages, free from any personal bias. God has been given different names in different contexts by the major religions of the world. God is designated as Love, Light, Bread, Breath, Spirit, Father, Son and the Holy Spirit etc., in the Holy Bible. But the basic truth is that God is One. The moment God is individualized as 'God of Abraham', 'The God of our Fathers', 'Your God', 'My God', 'The Hindu God', 'The Muslim God' etc., we recede from truth. As long as religious sects or denominaIions continue to emphasize the particular adjectives, neglecting the noun God, misunderstandings, dissensions and disintegration will continue to prevail in theology. As long as religion is confused with ritual and denominational organization, the adage "Nearer the church father from God" will be true.

Undoubtedly, we cannot underestimate the organizational aspect of religion. On the contrary, the existenee of various religious organizations and experiences is a great asset to religion, as an inner

experience of reality. But at the same time, neglect of the true meaning of religion and overemphasis on institutions and dogmas, in the present age of logic and science provokes a strong antipathetic reaction. Experience and spiritual awakening is the core of religion with the inner experience, providing a base to the external edifice. But when the base is removed, the entire building crumbles to pieces. Religion is empty without spiritual experience. The result is that cultural rootlessness is being encouraged today. The heart of mankind is empty and the church attendance as a mere formality, has made religion an object of criticism, frustration and ridicule. As a result, multitudes are turning their backs upon the organized worship, and finding dissatisfaction, both within the sanctuary and social activities, led by the church. The vacuum of the human heart is bound to seek some substitute for true religion. The sense of purposelessness has made modern society bankrupt mentally and ethically and bewildered socially and intellectually. Mankind is in search of its soul. But his self-discovery cannot be accomplished in prescribed rituals without understanding that the ritual has significance only when it leads to the awareness of God within.

Is God more realized in one church than others or, does He reside in every human h art ? Is He more satisfied with those who attend impressive services, or with those who experience Him in their simple daily worship ? These are some of the questions we face. The modern society is considered to be most highly civilized because of its progress in science

and technology, yet we exhibit a primitive ignorance in religious matters by regarding one religion to be truer than others, even though all the religions believe in the One omniscient, omnipotent and omnipresent Supreme Being.

These divisive ideas arise because God, the Spirit the Light, the Word, the Life and the Love has rarely been understood by the fanatic adherents of religion Over emphasis on the diversities has provoked discard in human society, artificially spliting it into thousands of schools and sects. God is Truth and God is One, as every major religion holds. Then why should one community, one sect, one denomination, one religion, one race or one particular culture monopolize Him ? Truth cannot be the property of any particular race, religion or nation.

The answer to these baffling questions lies in understanding the nature of man as a true manifestation of God and in adopting a spiritual discipline, which actualizes his potential perfection.

Man, as a complete man, is an integrated whole of body, mind, soul and pure self. He is the image of God in the sense that his body, mind and soul correspond to the Father, the Son and the Holy Spirit of Brahma, Vishnu and Shiva, as the gross, the subtle and the causal effulgent light body of God respectively. According to the findings of the practitioners of the spiritual discipline in Hindu tradition the physical body is 'Sat', or existence or life, the mind is 'Chit' or consciousness and the soul or causal body is 'Anand' or blissful state. Infinite existence, infinite consciousness and infinite bliss

(Sachidananda) are attributed to God, as the Supreme Bing. Since all these three attributes exist in man partially, he is, therefore, the true replica of God on earth. Man experiencs the three functions of physical existence, mental consciousness and spiritual bliss everyday, in the three states of waking, dream and sound sleep. The waking consciousness is the function of the gross body, in which plurality of objects is experienced. In dream consciousness, the mental objects are experienced by the mental subject. This is the state of duality, in which the pleasure and pain are merely mental, not physical. In the dreamless sleep even the mind is obliteratep or goes to rest. The only experience in dreamless sleep is that of non-duality or oneness. There is no pleasure or pain, loss or gain, anger, fear or hatred in the dreamless sleep. This experience of unity and bliss is the function of the spiritual body of man, who besides the three elements of existence, consciousness, and bliss, is also that transcendent indestructible pure spirit, which is the real divinity and transcendent God within him.

The purpose of spiritual disciplines and practices is to awaken the spiritual perfection in man, so that he experiences God-consciousness, seeing the presence of oneness in all the living beings. This level of God-consciousness, is called 'Jivanmukti' in Hindu tradition and 'the Kingdom of God', in Christian tradition. A Jivanmukta (a person, who has attained the state of spiritual perfection, while in physical body) rises above the dualities of pleasure and pain, loss and gain and praise and blame, with the result that he can actually practice

the principle of "Love your enemy". His love for God becomes universal and he begins to see the presence of loving God in each and every being. The path of love for God or the Bhakti Marg, advocated in the Bhagavadgita affirms, "He who sees God in every being and every being in God is never separated from God, nor does God ever forsake him." It is both the means as well as the end, the technique as well as the attainment of God-consciousness. The statement of Jesus Christ asserting that if someone spanks you on your right cheek, you should turn the other cheek, towords him, cannot be applied in practical life unless a person has attained the level of Jivanmukti.

The Bhakti Yoga (the path of Love), as the technique of God-consciousness, has four forms. These are (1) Dhyana Yoga, the Yoga of meditation on the form of God, (2) Upasana Yoga the worship of God with love and devotion, (3) Karma Yoga, the service of God by performing your duty for the sake of duty and (4) Surat-Shabda Yoga, the Yoga of uniting the soul with the Supreme Self by following the instructions of a Perfect Master or Guru to turn the attention inward.

The intention of this essay is to explain the technique of Surat Shabda Yoga or the Yoga of Light and Sound, which is both ancient and modern, and the practice of which is so universal that it does not require anyone to change his or her religious effiliation. In fact, this technique is covertly present in all the major religions of the world.

Before giving a systematic exposition of this universal technique, it would be desirable to clarify the meaning of the word 'Yoga'. The word 'Yoga' has been derived from the verbal root 'Yuj' in Sanskrit language. 'Yuj' means uniting or harnessing. Thus, Yoga stands for the union of the soul with God. The actual pronunciation of the word 'Yoga' is 'Yog'. The last letter 'a' is silent. The English equivalent of 'Yoga' is 'Yoke'. Yoke occurs more than once in the Old Testament and also in the New Testament. In the Old Testament it stands for the Yoke of God. In the New Testament Jesus Christ's word "Bear my Yoke" imply the union of the lower self with Christ Self.

Keeping in mind that Yoga is the technique of uniting with God, one can understand how the various Yogas, mentioned above aim at the same goal of God-consciousness. Whereas, meditation and worship may be little difficult and require some external restraints and rituals, the Yoga of Light and Sound is easy and spontaneous. In fact, the benefits derived in all the other Yogas are contained in the Surat Shabda Yoga.

There are three prerequisites of this spiritual discipline, viz : (1) Satsang (hearing the spiritual discourse, (2) Satguru (accepting a perfect master as the guide,) and (3) Satnam (meditating on the word or Name of God by applying the three restraints on the tongue, the eyes and the ears) so as to awaken God-consciousness. Spiritual discourse means getting acquainted with the nature of God, and man's relationship with God either by hearing the discourse of

a living Master or by reading spiritual literature like the Sermon on the Mount or a similar sermon, delivered by any Perfect Master, who is physically not living at present. However, it should be remembered even in the case of reading a spiritual discourse from the scriptures, it is essential for the aspirant to seek the help of some living master to understand the practical applicability of the said spiritual discourse It is, therefore, better to accept a living Perfect Master as an ideal. Accepting of Sadguru or the perfect Master is the second prerequisite. This acceptance of the Perfect Master calls for a deep love and devotion for the Master, who should be regarded as the living form of the Supreme God. One may accept Krishna, Buddha, Jesus Christ, Moses or any other living or non-living Perfect Master as the true guide. An unqualified Love for the Perfect Master would certainly expedite the inner development of the aspirant. This prerequisite is present, especially in Christianity. In fact, this is the quintessence of all religions. The love of God and the love of man, who is the replica of God, alone can invoke a universal love in the aspirant, who later on begins to feel the presence of God in every individual.

Being moved by the love and devotion of the aspirant, the Perfect Master expounds the method of experiencing God within, to the disciple. The exposition of the technique of the threefold restraint, requires an explanation of the words Light and Sond. It should be remembered that the causal body, or the soul is light, which is the basis of the mental body or mind. The mind, in turn is the ground, the creator and the sustain-

er of the physical body an in man, so in the cosmos. Light is the basis and the ground of the universal mind or the universal Christ (Vishnu), which in turn is the basis and the ground of the cosmos, constituted by the universes, galaxies and solar systems etc., which represent the physical body of God. It should be remembered that the way to the Supreme God, who, in His manifested Supreme nature, is the word or Sound (Shabda), is light, which is the first manifestation of the word. Both Hinduism and Christianity do accept Light and the Sound aspects of the Supreme Being, who in the beginning is Shabda, the original Sound or word and later manifests Itself in Light.

When God incarnates Himself in the human form, He declares Himself to be Light of Lights. Lord Krishna says in the Bhagavadgita, "I am the Light of Lights." Similarly Jesus Christ declares, "As long as I am in the world, I am the light of the world."

The sages of ancient India discovered long ago that the Shabda Brahman (Word) is the highest source of all existence in the cosmos. Shabda Brahman stands for the Super Sound, as the ground of all creation. According to this tradition, Sound gives rise to light i.e., space—Akash—gives birth to light, light to air, air to water&water to earth. Since all the physical elements earth water, air, fire originate from and merge into the sound, the sound is therefore the source as well as the goal of all creation. The creation is unfolded spirit with the first manifestation as the sound and the last manifestation as the earth. The vastness and the infinitude of the space with sound as its characteristic, is therefore the Ultimate Abode of all beings. This infinitude can be attained by man, if he merges back into the original Word or Sound through the process of Yoga of Light and Sound.

The Yoga of Light and Sound makes an aspirant go inwardly back to the original state of union with the Word by following the prescription of the three-fold restraint. This restraint is very simple and easy. The potentiality of our perfection for God-concious-ness is obstructed by our habit of fixing our attention on the outside, everchanging and transitory world. Three sense organs out of five are especially responsi-ble for our being attached to the external physical environment. These sense organs are the tongue, the eyes and the ears. The Yoga of Light and Sound suggests that we should shut our tongue, close the eyes and close the ears to turn our attention inward so that the vistas of inner space are opened up. By doing so, we travel inwardly, as if in outer space from level to level, and ultimately reach the state of merger with the original Sound. This simple technique can be adopted by everyone, irrespective of the diffe-rences of caste, creed, religion, sex, age and intellec-tual background.

When we shut the tongue, its habit of speaking should be transferred to the mind. The aspirant should mentally repeat a name of God or of any form of God, which his religious background permits him to choose. By doing so, his attention will turn inward When we close our eyes, our gaze should be fixed inwardly in the middle of the eyebrows, the point where the immense effulgent light of our soul is stored up. It will make us see all the lights of the solar sys-tems, galaxies and universes, ultimately making us experience a unique light, the like of which is never

experienced with open eyes. When we close the ears, our attention should be directed to the inner sound, which in the beginning is loud and gross and which becomes subtle gradually. The sound changes into various musical tunes and pitches. The attention to this inner music, resembling 'the music of spheres helps us to calm our mind, which becomes still (Be still and know that I am God—Old Testament), motionless and peaceful. The sound becomes soundless, loudness becomes stillness and the aspirant feels a deep sense of 'isness'. When the practitioner of this technique returns from the state in which he had risen above all dualities and conflicts, his attitude is absolutely changed in his day-to-day life. He begins to realize the unity behind diversity and harmony in discard. Then and then alone, he attains that state of 'Jivanmukti' or the level of 'the Kingdom of God within', which raises him to the state of God-consciousness, Christ-consciousness, Supra-consciousness. He does not hate anyone or feel jealous. His anger changes into love and his attachment to the transitory objects disappears. He is in the world, but not of the world. Love and meditation become the part of his normal experience.

This spiritual discipline is not sectarian, nor does it require an aspirant to change his or her religious affiliation. Each and every one can arrive at this highest religious experience, starting from his own traditional background. In this way the aspirant comes to understand how and why his own religious tradition was the means of attaning God-consciousness. He also comes to know to what extent his particular religious affiliation and his adherence to his traditional discipline

and practices, including the rituals and the worship were necessary to attain the goal of God-consciousness, while living a normal worldly life. This awareness broadens the view of the aspirant. He begins to realize that it is not a sin to be born in a particular religion, but it is a foolishness to die in it, without rising above it.

The actual experience of God-consciousness, so attained, opens one's eyes and makes one feel that there is a unity behind the apparent diversity among various religious traditions. Philosophy, science and religion become integrated for the person, who has experienced God-consciousness. Intellectual exercise of lingual analysis and theoretical elaboration can never solve the problem of 'unity in diversity'. Inner experience alone can clear our vision and even logically make us consistent in our understanding of religious truth, which is not only not inconsistent with the scientific truth, but is also unavoidably complimentary to it.

Monthly Message

OF

H. H. Param Sant

Hazur Manav Dayal Ji Maharaj

Dr. I. C. Sharma

My dearest Satsangees,

Radhaswami and Blessings of the Supreme Compassionate Lord ;

I had given you information about my Satsang tour till the first week of October, 87. After attending the Annual Conference of All India Philosophical Association (Hindi), rather during the session, I delivered a satsang in the morning of the 9th October at Bilari Manavta Mandir. Bilari is a small town about two or three Kms. from Moradabad. A large number of satsangees attended the spiritual discourse as usual. After the satsang we went for lunch at the residence of Mrs. Lata Sareen at Raja Ka Sahaspur which was a small state during the British period. Mrs. Savitri Sharma of Moradabad was also with us at this occasion. The Rani of Sahaspur Smt. Indira Mohini Ji, her daughter Raj Kumari Rina and son-in

-law also joined us at the lunch. I am giving information about them because this family is an ideal human family with great faith in spiritualism. Raj Kumari Rina is an elected member of the Legislative Assembly from Bilari Contituency. She believes that she was successful in the election because of my sincere blessings. Rani Indira Mohini Ji is a member of the Legislative Council of U.P. Previously she also served as a Cabinet Minister.

We started for Delhi at about 3 P.M. and arrived at Rajpur Road at 10 P.M. We started from Delhi in the morning of the 10th October and arrived at Manavta Mandir, Hoshiarpur at 6 P.M. I stayed in Hoshiarpur upto the 26th October. During this stay the weekly and monthly satsangs were held as usual. The satsangees arrived from distant places to attend the monthly satsang, and the satsangees of Batala served the breakfast to all the satsangees of the satsang in the morning. I had to arrive in Lucknow to participate in the 113th Birth Anniversary of Swami Ram Tirtha organised by Swami Ram Tirtha Pratisthana, Lucknow. Two satsangs were also held at the residence of Sri Krishna Mohan Tiwari. I delivered three lectures under the auspices of Ram Tirtha Pratishthana. The attendance of these meetings ran into thousands. We started from Lucknow on the 3rd Nov. by Railway train and arrived at Hoshiarpur on the 4th November.

I had forgotten to tell you that we stopped over ar Delhi for two days while going to Lucknow because we were to receive the American Acharya Dr. W. Rhodenhiser at the Airport on the 28th October.

Soon after arriving from USA he also accompained us to Lucknow. Dr. Rhodenhiser and Ach. Shabdanand went to Delhi from Lucknow on the 1st Nov. My brother-in-law Dr. K. M. Khurana and his daughter Leena had come from England to Delhi by that time. Dr. Khurana arrived in Hoshiarpur on the 5th Nov. Dr. Rhodenhiser and Ach. Shabdanand came to Hoshiarpur on the 6th Nov. by Matador. We were busy in preparation for the celebration of 101st Birth Anniversary of Param Dayal Ji Maharaj which was to be held on the 18th Nov. 87. People from distant places had started pouring in Manavta Mandir right from the 7th Nov. Thus daily satsang was held right from this date. The attendance at the weekly satsangs on Sundays was very large.

The function on the 18th Nov. was celebrated with full ferver. The release of the Param Dayal Centenary Volume was also scheduled on this occasion. Our dear Dr K. K. Sharma released this book. and the first recipient of this Volume was Gen. Jai Singh a former President of Manavta Mandir. The second copy of the volume was presented to Dr. W. Rhodenhiser. Besides this Miss Leera Khurana had written poems at a very young age which were published in the form of a booklet. This book was released by Gen. Jai Singh Ji. It is an anthology of Leena's pithy poems entitled "INNER VOICE." Miss Leena Khurana was the first recipient of this book.

The spiritual discourse started after these two events. Dr. Rhodenhiser expressed his views about

the importance of the Commenoration Volume. He emphasized that this volume would continue to give inspiration to future generations for ages to come and would be a guide for spiritual humanity. During my satsang I explained the significance of the incarnation of the Supreme Being in the form of Param Dayal Ji Maharaj. After the discourse the most attractive marble image of Param Dayal Ji Maharaj was unveiled by myself and Dr. Rhodenhiser simultaneously. The satsangees immensely enjoyed the vision of the beautiful likeness of Param Dayal Ji Maharaj because the image was almost alive. One of the greatest sculptors of Jaipur Mr. Attreya has done a marvellous job on this image. It looked as if Param Dayal Ji Maharaj was about to start giving spiritual discourse. After some days I saw a photograph of the image near which Bhagya Mata Ji was sitting. On seeing this I said spontaneously, "When was Bhagya Mataji photographed along with Param Dayal Ji Maharaj in this posture ?" In reality I had not noticed that it was the photograph of the image of Param Dayal Ji Maharaj. The copies of this picture and other pictures of the image are being produced and will be available to the Satsangees shortly.

As I have stated this image would be installed on the Vaisakhi Celebration because by that time the structure of the tomb of Maharaj Ji would be improved in the form of a temple.

We started on the morning of the 19th Nov.

and reached Faridabad by 7 P.M. Via Chandigarh. Dr. W.Rodenhiser, Dr. Khurana and Miss Leena Khurana accompanied us on this journey.

We arrived in Delhi on the 20th Nov. at 2 P.M. Many stansangees came to see me on the 21st Nov. on Rajpur Road residence. We arrived in Salwan School at 6 P.M. on that day. Hundreds of Satsangees had arrived there by 7 P.M. There behaviour was indicative of their love, faith and conviction. Thousands of Satsangees from far and wide practicipated in the Satsang commemorating 101st Birth Anniversary of Param Dyal Ji Maharaj on the 22nd Nov. 1987. Ach. K. P. Verma and Ach. Shabdanand also expressed their views on the importance of the Supreme Master in Sant Mat Mrs. Raj Salwan performed the ceremony of releasing the Param Dayal Centenary Commemoration Volume and also expressed her gratitude to thə Great Master. My spiritual discourse continued for about two hours. The attendance of the Satsangees had excelled all the previous gatherings. The audience continued to listen to the discourse while standing out side on all the sides of the building. Dr. Rhodenhiser also paid his tribute to Param Dayal Ji Maharaj. He emphasized the great importance of the Centenary Volume for the inspiration it could give to the aspirants in the centuries to come.

We started for Jalandhar on the morning of the 23rd. Nov. 1987 by Shan-e-Punjab and arrived in Manavta Mandir Hoshlarpur at about 4 P.M. after stopping over in Jalandhar for some time. The monthly Satsang was held on the 29th Nov. and was attended by a very large number of Satsangees who came from far and wide. The same day a Satsang was also held in the late after-noon at the residence of Mr. Mahendra Singh in Adampur which is only 23 Kms. distant from Hoshiarpur. We also visited the residence of Dr. Paras Ram for a little while. After the daily Satsang in the morning of the 30th Nov. we started for Jalandaar at 11 A.M. escorted by Sri T. K. Sharma who had arranged a general Satsang at his residence. He had made most allaborate arrangements for the Satsang and for the service of meals for a very large number of Satsangees besides the filming of the whole programme on a video cassette. Mr. T. K. Sharma is a very enthusiastic young man who is helping the cause of Manavta Dharma and who is fully dedicated to the service of Manavta Mandir. He has requested that at least one Satsang should be delivered every two months at his residence in Jalandhar.

We started for Lucknow on the 3rd Sept. by Punjab Mail because Smt. Vidya Vivek Ach. of Gita Mandir, Sitapur had organized a huge conference of

the saints and mahatmas in connection with the birth anniversary of the Bhagavadgita from the 25th Nov. to the 4th December 1987. Because of the paucity of time I could not participate for more than one day, and had agreed to deliver my discourse on the 4th December 1987. We arrived in Lucknow at about 12 noon. Mr. Krishna Mohan Tiwari and his collegue were present at the station to receive us. We stopped over for a while at the new residence of Shri K. M. Tiwari where a large number of satsangees had collectted to greet me before I arrived. We arrived in the Gita Mandir, Sitapur safely driven by Mr. K. M. Tiwari himself at 3 P.M· The whole crowd of the andiences were anxiously waiting for our arrival. I explained the significance of Bhagavad Gita from the point of view of the Sant Mat (the religion of saints) which was appreciated by the Mahatmas and the spiritual aspirants as well as by the satsangees. Ach. Krishna Mohan Srivastva had also arrived there along with a crowd of satsangees from Mishrikh Tirtha. After the satsang we had a dinner at the residence of the worthy son of Ach. K. M. Srivastava. Wearrived at the residence of Sri K.M. Tiwari in Lucknow. Quite a large number of Satsangees were already waiting there. After brief satsang we rested for the night.

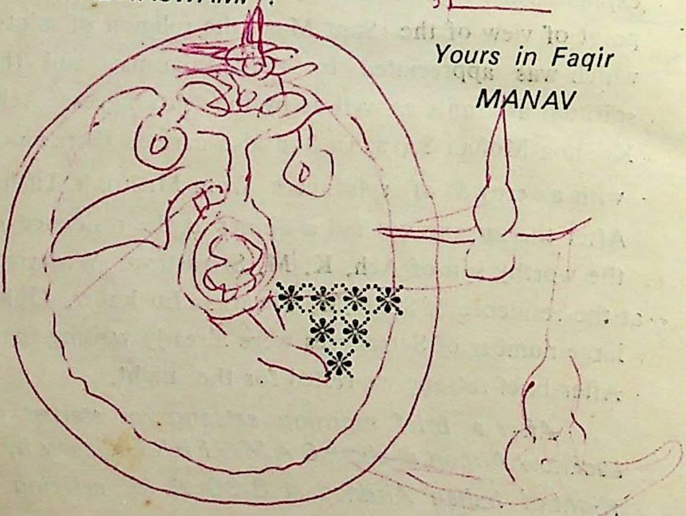
After a brief morning satsang we started for Lucknow Airport at about 6 A.M. I left Lucknow by a flight of Indian Airlines at 8-30 A. M. arriving in

Delhi at 9-30 A.M. Ach. K. P. Verma, his family, my dear Hari Vansha and Bhagya Mata Ji were present to receive me at the Airport. By dint of sheer good luck we met H. H. Swami Ram, who is well known in U.S.A. and in India, right at the Airport. He was glad to meet me and Bhagya. Swami Ram has done a great service to the culture and the great heritage of India by preaching reai spiritualism in a scientific way in the U. S. The details about his work and rest of the satsang-tour would be given in the next message.

I send you my greetings for this month and hope that you all will enjoy health, wealth, peace and perfection.

RADHASWAMI !

Yours in Faqir
MANAV



प्रार्थना

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
परम, सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
दाता दयाल के प्यारे तुम मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

Regd. No. 26269/74
Manav Mandir

JAN. 10th 1988
NWHSP—7



Address

To

2725 Prof R. L. Raina
D. A. V. College,
Abohar (Pb.).

Phone : 2022

From :

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR-146001.

Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur (Pb.)